स्वामी रामतीर्थ के समग्र ग्रन्थ– भाग १

स्वामी रामतीर्थ

के

लेख व उपदेश

—— :o: ——

पहला भाग

(संशोधित संस्करण)

—:o:—

अन्तरात्मा

—:o:—

प्रकाशक

रामतीर्थ प्रतिष्ठान

१४ मारवाड़ी गली

लखनऊ

मूल्य ६)२५

ॐ

स्वामी रामतीर्थ

के

लेख व उपदेश

•

प्रथम भाग

(संशोधित संस्करण)

•

अन्तरात्मा

•

प्रकाशक

रामतीर्थ प्रतिष्ठान

लखनऊ

चतुर्थावृत्ति] सन् १९६५ [मूल्य ३)२५

प्रकाशक—
रामतीर्थ प्रतिष्ठान
१४, मारवाड़ी गली,
लखनऊ

मुद्रक—
शुकला प्रिंटिंग प्रेस,
लखनऊ

दो शब्द

राम की वाणी अमर है। रामतीर्थ प्रतिष्ठान निरन्तर उनकी बाणी को जिज्ञासुओं के पास पहुँचाने में प्रयत्नशील है। सबसे पहले सन् १९१९ में राम के प्रवचन रामतीर्थ ग्रन्थावली के नाम से २८ भागों में प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ। पुनः सन् १९२९ में यही बाणी स्वामी रामतीर्थ के लेख व उपदेश के नाम से प्रकाशित हुई। तदुपरान्त सन् १९५० में इसका तृतीय संस्करण स्वामी राम के समग्र ग्रन्थ के नाम से १६ भागों में प्रकाशित हुआ। अब इस वर्ष चतुर्थ संस्करण संशोधित रूप में पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है।

सम्प्रति हमारा सभी राम प्रेमियों से नम्र निवेदन है कि वे पहले ही के समान राम की इस अमर वाणी के प्रचार में हाथ बटायें।

* हरि ॐ *

गीता जयन्ती
संवत् २०२२

अयोध्यानाथ सिंह, मंत्री
रामतीर्थ प्रतिष्ठान

विषय-सूची

भूमिका	पृष्ठ
१—आनन्द	१
२—आत्म-विकास	२०
३—सान्त में अनन्त	४१
४—कारण शरीर पर आत्मसूर्य	६३
५—वास्तविक आत्मा	९१
६—पाप, आत्मा से उसका सम्बन्ध	११९
७—पाप के पूर्व लक्षण और निदान	१४६

ॐ

भूमिका

[स्वामी राम के व्याख्यानों के अंग्रेजी संस्करण के प्रथम भाग की भूमिका के रूप में दिया हुआ श्रीयुत पूर्णसिंह जी का लेख ।]

स्वामी राम के नाम और याद में यह ग्रन्थावली जन-साधारण को भेंट की जाती है । इसमें उनके सब लेखों और व्याख्यानों को एकत्र करने का विचार है। उनके लेखों और व्याख्यानों का एक छोटा सा अंग्रेजी संग्रह उनके जीवन-काल में ही मद्रास की श्रीगणेश कम्पनी ने प्रकाशित किया था । इनके सिवाय, उनके अन्य हस्त-लेख, जिनमें कतिपय कुछ अमेरिकन मित्रों की लिखी हुई स्वामी जी के अमेरिका के व्याख्यानों पर टिप्पणियां भी थीं, स्वामी जी के देह-त्याग पर उनके बक्स में मिले थे। उनके जीवन में प्रकाशित लेखों को छोड़ कर, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है, और जो इस संग्रह में भी सम्मिलित हैं, स्वामी जी के अन्य व्याख्यानों पर उनकी पुनरावृत्ति नहीं हो पायी। अतएव बहुत कुछ इनमें ऐसा अंश है, जिसे वे शायद निकाल डालते, और बहुतेरी ऐसी बातों का अभाव है, जो शायद वे बढ़ा देते । इन हस्त-लेखों को बिलकुल नये सिरे से लिखने का और अन्य बहुत से नवीन विचार, जो उनके मन में थे, उन्हें जोड़ कर अपने इन उपदेशों की क्रमबद्ध व्याख्या करने का उनका विचार था। ऐसा संशोधित और पारिमार्जित ग्रन्थ अवश्य ही वेदान्त-दर्शन पर एक नवीन और अद्भुत ग्रन्थ होता, जिससे वेदान्त और भावी सन्तानों के व्यक्तिगत तथा सामाजिक धर्म की उन्नति होती। किन्तु मुख्यत: दो कारणों से उनकी इच्छा अपूर्ण रह गयी। एक तो अपने प्रस्तावित

ग्रन्थ की तैयारी के लिए, देह त्यागने के प्राय: दो वर्ष पूर्व मूल वेदों का सर्वांगपूर्ण अध्ययन उन्होंने गम्भीरता और उत्सुकता पूर्वक प्रारम्भ किया था ; और इस प्रकार जो समय अपने लेखों को व्यवस्थित करने में खर्च करके वे बड़ा उपकार कर सकते थे, वह अन्तिम कृति को महान् और स्मरणीय बनाने के प्रयत्न में लगा। दूसरे, जनता के संसर्ग से दूर, हिमालय के एकान्तवास से, जो उन्हें प्रिय था, अनन्त स्वरूप में उनकी तल्लीनता नित्य प्रति बढ़ती गयी, और क्रमश: ऊँची उड़ाने भरते हुए उनके मन के पैर उखड़ गये। (जनसमागम बना रहने पर सम्भव था कि लोक की आशाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए उनकी बुद्धि उत्तेजित होती।) इन पंक्तियों का लेखक जब अन्तिम बार उनके साथ था, वे अधिकतर चुप रहते थे। लिखने और पढ़ने में उन्हें रुचि नहीं रह गयी थी। प्रश्न करने पर वे अपनी ज्ञानावस्था अथवा अपनी परम मौनता, जिसे वे उस समय जीवन में मृत्यु (जीवन-मुक्ति) के नाम से पुकारते थे, के रहस्य हमें समझाते थे। वे हम लोगों से कहते थे कि "जितना ही अधिक कोई जीवन में मरता है, दूसरों के लाभ के लिए उतनी ही अधिक भलाई स्वभावत: और अनायास उससे निकलती है। हाथ में लिया हुआ काम मुझसे पूरा होता न जान पड़ता हो, परन्तु मैं जानता हूँ कि मेरे चले जाने पर वह किसी समय अवश्य होगा और अधिक अच्छी रीति से होगा। जो विचार मेरे मन में भरे हुए हैं और मेरे जीवन के पथ-प्रदर्शक रहे हैं, वे धीरे-धीरे अवश्य, काल पाकर समाज में व्याप जायँगे, और तभी उनके (समाज के लोगों के) प्रारब्धों को ठीक फलीभूत कर सकेंगे, जब मैं इस समय सारे मनसूबों, इच्छाओं और उद्देश्यों को त्याग कर परमात्मा में अपने को लीन कर दूँगा।

यह विचार उनमें ऐसा बद्धमूल हो गया था कि लाख प्रार्थनायें भी उन्हें लिखने में न लगा सकीं।

इस प्रकार यद्यपि हम उनकी शिक्षाओं की उन्हीं की अपनी हस्त-लिखित नियमित व्याख्या से वंचित रहे, परन्तु यह संतोष की बात है कि उनके विचार की कुछ सामग्री हमें प्राप्त है, चाहे वह कितनी ही बिखरी हुई और टूटे-फूटे अंशों में क्यों न हो। अतएव कुछ संकल्प-विकल्प के बाद निश्चिय किया गया कि उनके विचार की इस सामग्री और उनके विभिन्न व्याख्यानों में प्रकट होने वाले उनके ज्ञान के प्रतिबिम्बों को, उनके निबन्धों और नोट-बुकों (Note-books) सहित, प्राय: उसी रूप में जिनमें वे छोड़ गये हैं, छाप कर सर्वसाधारण के सामने रख दिया जाय। जो राम से मिले हैं, उनके बहुतेरे और कदाचित् सब व्याख्यानों में उन्हें पहचान लेंगे और बोध करेंगे कि उनके विलक्षण ओजस्वी ढंग को मानों वे अब भी सुन रहे हैं। वे उनके व्यक्तित्व की मोहनी से एक बार फिर अपने को सम्मोहित समझेंगे, और उसके साथ-साथ राम की प्रेममयी और ज्ञानमूलक संगति से जो संस्कार उनके चित्तों में घर कर गये हैं, उनके प्रभाव से वह उस कमी को भी पूरा कर देंगे, कि जो इस छपी लिपि में रह गयी है। जिन्हें राम के दर्शन का अवसर नहीं मिला, वे यदि धीरज धर कर आदि से अन्त तक उनके इन कथनों को पढ़ जायँगे, तो उस परमानन्दमय ज्ञानावस्था का अनुभव कर लेंगे, जो इन कथनों का आधार है और इनको मनोहर तथा अर्थपूर्ण बनाती है। किसी स्थल पर सम्भव है, वे उनके विचारों को न समझ सकें। परन्तु दूसरे स्थान पर उन्हीं विचारों को वे कहीं अधिक स्पष्टता और प्रबलता से प्रकट किया हुआ पावेंगे।

विभिन्न विचारों और मतों के लोगों को, इन पन्नों के पढ़ जाने पर अपनी बुद्धि और जीवात्मा के भोजन के लिए यथेष्ट सामग्री प्राप्त होगी, और निस्सन्देह बहुत कुछ को तो वे अपनी ही वस्तु समझेंगे।

इन ग्रन्थों में स्वामी राम हमारे सामने साहित्य-लेखक के रूप में नहीं प्रकट होते, और उनकी जरा भी इच्छा नहीं दीखती कि उन्हें ग्रन्थकार मान कर उनकी आलोचना की जाय। किन्तु वे हमारे सामने जीवन के आध्यात्मिक नियमों के उपदेशक की महिमा से युक्त होकर आते हैं। उनके भाषण का एक बड़ा भारी लक्षण यह है कि वे अपने हृदय की सच्ची बात हमसे कहते हैं और व्याख्यानदाताओं की तरह वेदान्त के सिद्धान्तों को हमारे सामने सिद्ध करने की चेष्टा नहीं करते। यह बात नहीं कि उनमें यह शक्ति नहीं थी। उनके जानने वाले जानते हैं कि वे अपने विषय के पूर्ण ज्ञाता थे, किन्तु कारण यह है कि वे केवल उन्हीं विचारों को हमारे सामने रखने की चेष्टा करते हैं जिनको अपने जीवन काल में व्यवहार में वे ला चुके थे और जिनका अनुकरण, वे समझते थे, दूसरों को भी उसी तरह मनुष्य-जीवन के गौरव, आनन्द और सफलता के सर्वोच्च शिखर पर ले जायगा, जिस तरह उन्हें ले गया था। अतएव वे अपना बुद्धि-वैभव हमें नहीं दिखलाते, परन्तु अपने कुछ अनुभव हमें बतलाना चाहते हैं, और कई एक विचारों पर अमल करने से जीवन में प्राप्त होने वाले परिणामों की प्रेरणा से वे उत्साह के साथ साफ-साफ बोलते हैं। इस प्रकार उनके ये व्याख्यान उस सत्य को जिसमें उन्हें विश्वास था, अनुभव करने में केवल सहायक और संकेत मात्र हैं, न कि उस सत्य की दार्शनिक और ठोस युक्तियों से पूर्ण व्याख्यायें। बुद्धि-वैभव के भार से दबे हुए ग्रन्थों की अधिकता से क्या हम ऊब नहीं

उठे हैं ? वास्तव में जीवन के साधारण, सरल और स्पष्ट स्वरों में हम लोगों से एक विलक्षण पुरुष का बातचीत करते दिखायी देना बहुत ही सुखकर है। कोई दलील देने के बदले स्वामी राम इस विश्वास से हमें एक कहानी द्वारा उपदेश देते हैं कि मनुष्य के वास्तविक जीवन को दूसरे के जीवन से अधिक सहानुभूति होती है और मानसिक तर्क-वितर्क की अमूर्त रचना की अपेक्षा वह उसे अधिक प्रभावशाली बनाती है। उनके वर्णन में कवियों का सा उल्लास और स्वतंत्रता है। वे यद्यपि तत्वज्ञानी कवि थे, तथापि उनके विचारों और वचनों की प्रतिपादन-शक्ति अनन्त को दर्शाने में अपूर्व थी। वे जीवन के उस गम्भीर संगीत के तत्त्वज्ञ हैं जो केवल उन्हीं को सुनायी देता है जो यथेष्ट गहराई तक जाते हैं।

राम स्वयं क्या थे और हमारे लिये क्या थे, इसकी धारणा कराने के लिए इस स्थान पर कुछ पंक्तियों का लिखना उपयुक्त होगा। पंजाब के एक निर्धन ब्राह्मण कुटुम्ब में जन्म लेकर बचपन से ही उन्होंने स्वयं धीरता से अपना निर्माण किया। पल-पल, क्षण-क्षण और दिन-दिन उन्होंने धीरे-धीरे अपने को बनाया। यह कहा जा सकता है कि उनके भावी जीवन का सम्पूर्ण चित्र शायद उनके हृदय-नेत्रों के सामने पहले ही से खिचा हुआ था, क्योंकि बाल्यकाल में ही वे एक निश्चित उद्देश्य के लिए बड़ी गम्भीरता से और विचार पूर्वक चुपचाप तैयार हो रहे थे। गरीब ब्राह्मण-कुमार के निश्चयों में परिपक्व मन की दृढ़ता थी। वह किसी भी परिस्थिति में हिचकता नहीं था, और न किसी प्रकार की कठिनाई से भयभीत ही होता था। उस अत्यन्त नम्र और मनोहर आकृति के भीतर जिसमें प्रायः कोमल कुमारी की सी लज्जा और संकोच के संयोग की झलक थी, ब्राह्मण बालक के दुर्बल शरीर में वह दृढ़ निश्चय-शक्ति छिपी हुई थी,

जो हिलना नहीं जानती थी। यह बालक एक आदर्श विद्यार्थी था। अध्ययन पर इसका अनुराग सांसारिक सुखों की आशा से नहीं, परन्तु ज्ञान की नित्य बढ़ती हुई प्यास को बुझाने के लिए था, जो अनुराग दिन प्रति दिन इसके अन्तःकरण में नया जोश भरता रहता था। इनका नित्य का पढ़ना इस ज्ञानकुण्ड की वेदी पर पवित्र आहुतियाँ थीं।

रात को पढ़ने के हेतु दीपक के तेल के लिए वे कभी-कभी वस्त्र नहीं बनवाते थे व किसी-किसी दिन भोजन भी नहीं करते थे। स्वामी राम की छात्रावस्था में ऐसा प्रायः हुआ है कि वे शाम से सबेरे तक पढ़ने में लीन रहे। विद्या का प्रेम इतने जोर से उनके हृदय को मसोसता था कि विद्यार्थी-जीवन के साधारण सुख और शारीरिक आवश्यकतायें बिलकुल भूल गयी थीं। भूख और प्यास, सर्दी और गर्मी का उनकी इस अतिशय ज्ञानपिपासा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। गुजरानवाला और लाहौर में अभी ऐसे लोग मौजूद हैं जिन्होंने उनकी छात्रावस्था देखी है। वे कहते हैं कि शुद्ध-चित्त गोस्वामी (तीर्थ राम) दिन-रात असहाय और अकेला परिश्रम करता था, अर्थात् बिना युद्ध के साधनों के जीवन से संग्राम करता था। और उन्हें वे अवसर याद हैं, जब दानशीलता का गर्व रखने वाले इस देश में भी बेचारे ब्राह्मण-बालक के पास कई दिनों तक बहुत थोड़ा या बिलकुल ही भोजन नहीं होता था, और इस पर भी उसके मुखमण्डल से अमित हर्ष और सन्तोष सदा टपकता रहता था।

अतएव स्वामी राम ने अपने तत्पश्चात् के जीवन में जिस ज्ञान को अपने उपदेशों द्वारा प्रकट किया है, वह घोरतम तपस्या और

कठिनतम परिश्रम से रत्ती-रत्ती करके संचित किया हुआ था। और हमारे लिए तो वह अत्यन्त करुणा से परिपूर्ण है, क्योंकि हमें याद है कि यह पुष्प कैसे अत्यन्त दरिद्र और कटीली परिस्थिति में कवि, तत्व-ज्ञानी, विद्वान् और गणितशास्त्री के रूप में खिला।

लाहौर के सरकारी कालेज के प्रधानाध्यापक (Principal) ने जब प्रान्तीय सिविल सरविस (Provincial Civil Service) के लिए उनका नाम भेजने की इच्छा प्रकट की थी, तब राम ने सिर झुका कर और आँखों में आँसू भर कर कहा था कि अपनी कमाई बेचने के लिए नहीं बल्कि बाँटने के लिए मैंने इतना श्रम किया है। शासक अधिकारी बनने की अपेक्षा अध्यापक होना उन्हें पसन्द हुआ।

विद्या में ऐसा लिप्त और एकाग्र विद्यार्थी बड़ा होकर शुद्ध और सत्यप्रिय मनुष्य स्वभावतः हो ही जाता है।

विद्यार्थी अवस्था में भी राम की बुद्धि अपने इर्द-गिर्द की परि-स्थितियों से पूर्णतया दूर रह कर पूर्ण एकान्त का सुख लूटती थी। वे अकेले रहते हुए पुस्तकों द्वारा केवल महात्मा पुरुषों की संगति करते थे। अपने उच्च कार्यों में दिलोजान से लगे हुए वे न दाहिने देखते थे, न बायें। अपने जीवन को उन्होंने बचपन से ही अपने आदर्शों से एक ताल कर रखा था। उनकी विद्यार्थी-अवस्था जानने वाले उनके चरित्र की निर्मल स्वच्छता और जीवन के उच्च नैतिक लक्ष्य को सम्मान पूर्वक स्वीकार करते हैं। अपने विद्यार्थी जीवन में स्वामी राम भीतर ही भीतर बढ़ रहे थे। वे अपने जीवन को बारम्बार गला-गला कर पूर्णता के साँचों में ढाल रहे थे। अपनी प्रतिभा को पूर्णतया सुन्दर बनाने के लिए वे उसकी बेडौल रेखाओं को दिन-रात की

छेनी से गढ़ते रहे, नित्य प्रति वे अपने से अधिक-अधिक सुघड़ होते जाते थे। जब वे गणित-विद्या के अध्यापक नियत हुए, तो पहला निबन्ध उन्होंने यही लिखा था—"गणित का अध्ययन कैसे करना चाहिए" (How to study Mathematics) उसमें वे यही उपदेश देते हैं कि पेट को चिकने और भारी पदार्थों से अधिक भर देने वाला तीव्र-बुद्धि विद्यार्थी भी अयोग्य और स्थूल-बुद्धि हो जाता है। इसके विपरीत हलके भोजन से मस्तिष्क सदा स्वच्छ और हलका रहता है। और यही विद्यार्थी-जीवन की सफलता का रहस्य है। उनका कहना है कि काम में उचित ध्यान लगाने के लिए दूसरी जरूरी शर्त है मन की शुद्धता और इस एक बात के बिना कोई भी उपाय विद्यार्थी के मन की वृत्ति को ठीक नहीं रख सकता।

इस तरह वे अपने विद्यार्थी-जीवन के अनुभवों को ऐसे सरल उपदेशों में भर देते हैं जैसे कि हमें उक्त निबन्ध में मिलते हैं। वे लिखने के लिए नहीं लिखते हैं, और न बोलने के लिए बोलते हैं। वे अपनी लेखनी तभी उठाते या मुख तभी खोलते हैं, जब उन्हें कुछ देना होता है। "मैं तथ्यों को बटोरने के लिए खूब यत्न करता हूँ, और जब वे मेरे हो जाते हैं, तब मैं ऊँचे पर खड़ा होकर सदा के लिए अपने सत्य के संदेश की घोषणा करता हूँ" (I try hard for gathering facts, but when they are mine, I stand on a rock proclaiming my message of truth for all times) ऊपर लिखी सम्मितियों की चर्चा यहाँ केवल उनकी पहले सीखने और तब सिखाने की शैलो बताने के लिए की गयी है। वे अपने पर वस्तुओं और विचारों के प्रभावों का निरीक्षण करते थे, और तब अपने स्वतंत्र तथा निष्पक्ष निष्कर्ष स्थिर करते थे,

और उन्हें सत्य या असत्य मान लेने से पूर्व अपने जीवन की कठिन कसौटी में वर्षों तक कसते थे और दूसरों के काम के लायक बनाने से पूर्व उन्हें पुष्ट करने में वे और भी अधिक समय लगाते थे। जैसा कि ऊपर कहा गया है, जो बातें वे दूसरों को सिखाना चाहते थे, उन्हें पूरी तरह बिना सीखे और बिना उनके पूर्ण पण्डित हुए वे अपना मुख नहीं खोलते थे, और शिक्षक बनने का स्वांग नहीं रचते थे। उनके चरित्र की गुप्त कुंजियों में से एक यह रहस्य है। क्या विद्यार्थी-जीवन में और क्या अध्यापक की दशा में, स्वामी राम साहित्य और विज्ञान की अपेक्षा उच्चतर ज्ञान के लिए सदा गुप्त भाव से श्रम करते रहे और स्वामी बन कर संसार के सामने अपने सत्य की घोषणा करने से पूर्व वे ठीक डारविन (Darwin) की भाँति जीवन के उच्चतर नियमों पर अपने विचारों और विश्वासों का धीरता पूर्वक संगठन करते रहे। हम उन्हें सदा मानव जाति के प्रति अपने जीवन की जिम्मेदारी निभाने के लिए गम्भीर ज्ञान के साथ काम करते पाते हैं। वे जानते थे कि अपने जीवन के उद्देश्य की पूर्ति के लिए अध्यापक का आसन छोड़ कर उन्हें वह मञ्च ग्रहण करना पड़ेगा, जहाँ से समग्र मानव जाति तथा भावी सन्तति को उपदेश मिलेगा; और वे अपने मन में अपने इस दायित्व (जिम्मेदारी) को सदा तौलते रहते थे। अतएव उन्हें आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिए श्रम करने में और भी अधिक कष्ट उठाना तथा घोर युद्ध करना पड़ा। प्रेम और विश्वास के पंखों को लगा कर उन्होंने धीरे-धीरे और दृढ़तापूर्वक अपने जीवन को परमात्मा के वक्षस्थल पर उड़ाना शुरू किया, और वे नित्य प्रति ऊंचे उड़ते-उड़ते अनन्त में, ब्रह्म में, परमात्मा में, अथवा उन्हीं के अपने शब्दों के अनुसार आत्मदेव समा गये। उनकी आत्मा की अभिलाषाओं, आध्यात्मिक दिक्कतों, चित्तवृत्ति

सम्बन्धी कठिनाइयों और मानसिक क्लेशों का इतिहास हमारी आँखों से छिपा हुआ है। परन्तु उनके जीवन के इस भाग में परिश्रम से प्राप्त किये हुए अनुभवों की ही सम्पत्ति हमें उनके स्वामी-जीवन की शिक्षाओं में मिलती है। अनेक बार सारी रात वे रोते रहे और सवेरे केवल उनकी धर्म-पत्नी को उनके बिछौने की चादर आँसुओं से भीगी मिली। उन्हें क्या कष्ट था? किस लिए वे इतने दु:खी थे। कारण कुछ भी हो, उनके चित्त की उत्कट पारलौकिक आकांक्षाओं के ये आँसू हैं कि जो उच्चतम प्रेम के लिए उनके विचारों को सींचते थे। नदियों के तटों पर, जङ्गलों के एकांत अन्धकारों में, प्रकृति के बदलते हुए दृश्यों को देखने और आत्मा के चिन्तन में उन्होंने अनेक रातें बे सोये काटीं। इस दशा में कभी तो अपने सङ्गी के बिछुड़े हुए बिरही पक्षी के शोक-सन्तप्त स्वर में अपने रचे हुए गीत गाते थे और कभी कभी उत्कट ईश-भक्ति से मूर्छित हो जाते थे, और सचेत होने पर अपने नेत्रों के पवित्र गङ्गा-जल में स्नान करते थे। उनके प्रेम की अवस्थायें सदा अज्ञात रहेंगी, क्योंकि उन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन को हमसे छिपा रखना पसन्द किया है, और उनके ज्ञान-विकास के व्यौरे को उनके सिवाय और कोई नहीं जानता। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि स्वयं कवि और देवदूत होने के पूर्व, वे साधुओं, महात्माओं तथा कवियों के प्रभापूर्ण समूह की सङ्गति में रहते थे। ईरान के सूफियों, विशेषत: हाफिज अत्तार, मौलाना रूम, और शम्सतबरेज के वे निरन्तर साथी थे। सदियों के अपने धार्मिक उत्कर्ष सहित भारत के महात्मागण उनकी आत्मा को ज्ञान देने वाले थे। तुलसीदास और सूरदास निस्सन्देह उनके प्रेरक थे। चैतन्य का उन्मत्त प्रेम, तुकाराम और नानक की मधुरता, कबीर और फरीद तथा हसन और बूअली कलन्दर की धारणायें, प्रह्लाद और ध्रुव के विश्वास, मीराबाई

बुल्लाशाह और गोपालसिंह की अतिशय आध्यात्मिकता, कृष्ण की गूढ़ता, शिव और शंकर का ज्ञान, इमर्सन (Emerson), कैंट (Kant), गेटे (Goethe), और कारलाइल (Carlyle), के विचार, पूर्व के आलसी जीवन की तंद्रा दूर करने वाले पाश्चात्य वाल्ट ह्विटमैन (Walt Whitman) और थोरो (Thoreau) के स्वतन्त्र गीत, पूर्व और पश्चिम दोनों ही के धार्मिक विचारों और अन्धविश्वास मूलक विद्याओं पर प्रभाव डालने वाले तथा मानव-हृदय को उदार बनाने वाले और मानव-मन को सदियों की मानसिक गुलामी से छुटाने वाले क्लिफोर्ड, (Clifford), हक्सले (Huxley), टिंडल (Tyndal), मिल (Mill), डार्विन (Darwin) और स्पेंसर (Spencer) की वैज्ञानिक सत्यता और स्पष्टवादिता—इन सब तथा अन्य अनेक प्रभावों ने व्यक्तिगत रूप से एवं मिलकर उनके मन को आदर्शवादी बनाया था। अपने स्वामी जीवन में उन्हें हम सदा परमात्मा में निवास करते पाते हैं; और लड़कपन के विनीत और लज्जाशील विद्यार्थी की छाया भी उनमें नहीं दिखायी पड़ती। अब उनका स्वर कहीं अधिक शक्तिशाली, चरित्र ओजस्वी, अनुभव हृदय-प्रेरक, और शरीर अति आकर्षक हो गया था। उनकी उपस्थिति आस-पास के वायु-मण्डल ही को मोह लेती थी। उनकी संगति में मनुष्य के मन की अवस्थायें सर्वतः सुन्दर दृश्यों में घूमती रहती थीं। उनकी सच्चाई का जादू कभी तो उपस्थित जन-समूह को रुला देता था, और कभी परम संतोष की मुस्कान पैदा करता था। साधारण से साधारण वस्तुओं को भी हमारी दृष्टि में ईश्वर के ऊँचे से ऊँचे अवतारों का रूप देने में वे कवि की भाँति समर्थ थे। उनके स्पर्श से किसी में कवि की, तो किसी में चित्रकार की, किसी में उत्कट योगी की, तो किसी में शूरवीर की रुचियां पैदा

होती थीं। अनेक साधारण मन इस दर्जे का आवेश अनुभव करते थे कि उन्हें अपनी मानसिक शक्ति में वृद्धि प्रतीत होती थी।

उनके एक अमेरिकन मित्र ने उनके देह-त्याग पर लेखक को नीचे दिया पत्र लिखा था। इसमें उनका वर्णन ठीक वैसा ही हुआ है जैसा कि वे हम लोगों के लिए थे। और इस कारण से उसका यहां उद्धृत करना उचित होगा।

"भाषा के उदासीन व संकीर्ण शब्दों में जिस बात को प्रकट करना अति कठिन है, उसे व्यक्त करने की जब मैं चेष्टा करता हूँ तो शब्द मेरा साथ नहीं देते।

"राम की भाषा मधुर निर्दोष बालक की, पक्षियों, पुष्पों, बहती नदी, पेड़ की हिलती हुई डालों, सूर्य, चन्द्रमा और नक्षत्रों की भाषा थी। संसार और मनुष्यों के बाहरी दिखावे के तले उनकी भाषा बहती थी।

"समुद्रों और महाद्वीपों, खेतों और तृणों तथा वृक्षों की जड़ों के नीचे से गहरा बढ़ता हुआ उनका जीवन प्रकृति में जा मिलता था; नहीं, नहीं, बल्कि प्रकृति ही का जीवन हो जाता था। उनकी भाषा मनुष्यों के क्षुद्र विचारों और स्वप्नों के भीतर तक प्रवेश करती थी। उस विलक्षण मधुर तान को सुनने वाले कान कितने थोड़े हैं। उन्होंने उसे सुना, उस पर अमल किया, उसका दम भरा, उसकी शिक्षा दी, और उनकी समग्र आत्मा उसके गहरे रंग से रंगी हुई थी। वे ऐसे देव-दूत वा पैगम्बर वा धर्म-प्रवर्तक (messenger) थे कि जिनके अन्दर आनन्द परिपूर्ण था।

"ऐ मुक्त आत्मा ! ऐ आत्मा, जिसका शरीर से नाता पूरा हो

चुका है ! ! ऐ उड़ती हुई, शब्दातीत सुखी, दूसरे लोकों में जाती हुई, और पुन: वास्तविक दशा को प्राप्त होती मुक्त आत्मा ! ! ! तुझे बारम्बार प्रणाम है।

× × × ×

"वे इतने नम्र, सरल, बालक-सदृश, पुनीत और श्रेष्ठ, सच्चे, उत्साही और गर्व रहित थे कि सत्य की चाह में विकल मन वालों में से जिस किसी का उनसे संसर्ग हुआ, वह बिना अपार लाभ उठाये न रहा। प्रत्येक व्याख्यान या छात्र-उपदेश के बाद उनसे प्रश्न किये जाते थे, जिनके उत्तर सदा ही अति स्पष्ट, संक्षिप्त, मधुर और प्रेम पूर्वक दिये जाते थे। वे सदा आनन्द और शान्ति से भरे रहते थे और जब वे वार्तालाप, लिखने वा पढ़ने से निवृत्त होते थे, तब निरन्तर "ओ३म्" उच्चारण करते थे। वे हर एक में ईश्वर के दर्शन करते थे और प्रत्येक को "मंगलमय परमेश्वर" कह कर पुकारते थे।

"राम आनन्द के निरन्तर उमड़ते स्रोत थे। ईश्वर में ही वे जीते थे, ईश्वर में ही उनकी गति और अस्तित्व था—नहीं, नहीं, बल्कि वे ईश्वर के आत्मा ही थे। एक बार उन्होंने मुझे लिखा था, "जिन्हें आनन्द लूटने की इच्छा है वे तारागण-प्रकाशित प्रभामय आकाश में चमकते हुए हीरों का मजा लूट सकते हैं ; हँसते हुए बनों और नाचती हुई नदियों से अथाह सुख ले सकते हैं ; शीतल पवन, उष्ण सूर्य-ज्योति और व्यथा-नाशक चाँदनी से अनन्त आनन्द पा सकते हैं, जो प्रकृति की ओर से सब की सेवा के लिए निर्विघ्नता पूर्वक नियत किये गये हैं। जिनका विश्वास है कि उनका सुख किन्हीं विशेष अवस्थाओं पर अवलम्बित है, वे सुख के दिन को अपने से

सदा पीछे हटते और अगिया-बैताल की भांति निरन्तर दूर भागते पावेंगे। संसार में स्वास्थ्य के नाम से पुकारी जाने वाली वस्तु आनन्द का साधन होने के बदले समस्त प्रकृति, स्वर्गों और सुन्दर दृश्यों के गौरव और सुगन्धित-तत्त्व को छिपाने में केवल एक कृत्रिम परदे का काम देती है।''

× × × ×

''राम पहाड़ी प्रदेश में खेमे में रहते थे, और रंच हाउस (Ranch house) में भोजन करते थे। यह एक मनोहर स्थल था। विषम वन्य-दृश्य, दोनों ओर सदा हरित वृक्षों तथा घनी उलझी हुई झाड़ियों से ढके हुए ऊँचे पर्वत से युक्त था। सैक्रामेण्टो (Secramento) नदी प्रचण्ड वेग से इस घाटी से नीचे उतरती थी। यहीं राम ने अनेकानेक पुस्तकें पढ़ीं, अपनी उत्कृष्ट कवितायें रचीं और घण्टों तक निरन्तर ध्यानावस्थित रहे। नदी में जहाँ पर धारा बड़ी तेज थी, वे कई सप्ताह तक बराबर एक बड़ी गोल शिला पर बैठते थे और केवल भोजन के समय घर आते थे, जब वे हमें उत्तम बातें सुनाया करते थे। शास्ता स्रोतों (Shasta Springs) के अनेक लोग उनसे मिलने आया करते थे, और सदा उनका सहर्ष स्वागत किया जाता था। उनके श्रेष्ठ विचार सब पर गहरा और स्थायी प्रभाव जमा देते थे। जो केवल कौतूहल वश उन्हें देखने आते थे, वे भी तृप्त होकर लौटते थे, और सत्य का बीज सदा के लिए उनके हृदयों में जम जाता था। सम्भव है कि कुछ दिनों तक उन्हें इस प्रभाव वा बीज का ज्ञान न हो, परन्तु काल पाकर उसका अंकुरित होना और उसका पुष्ट तथा प्रबल पेड़ में बढ़ना अनिवार्य है, जिसकी शाखायें चारों ओर फैल-फैल कर संसार के सब भागों को भाईचारे और दिव्य-प्रेम के बन्धन में जकड़ देंगी। सच्चाई के बीज सदा बढ़ते हैं।

"वे बड़ी दूर तक टहलने जाते थे। इस प्रकार शास्ता स्रोतों में रहते हुए वे साधारण, स्वतन्त्र, निवृत्त, और आनन्दमय जीवन बिताते थे! वे बड़े प्रसन्न थे। उन्हें अनायास हँसी आती थी, और जब वे नदी तट पर होते थे, तब उनकी हँसी घर से साफ सुनायी पड़ती थी। वे स्वतन्त्र थे, बालक और साधु की तरह स्वतन्त्र थे। बराबर कई-कई दिनों तक वे ब्रह्म-भाव में लीन रहते थे। भारत के प्रति उनकी अचल भक्ति और अन्धकार में पड़े हुए भारतवासियों को उठाने की उनकी अभिलाषा वास्तव में पूर्ण आत्म-निग्रह (self-abnegation) थी।

× × × ×

"वहाँ से चले जाने के बाद मुझे उनका एक पत्र मिला था। पीछे मुझे पता चला कि यह पत्र उनसे कठिन बीमारी की हालत में लिखा गया था। इसमें लिखा था, एकाग्रता और शुद्ध दैवी भावना की इन दिनों विलक्षण प्रबलता है, और ब्रह्म-भाव बड़े बेग से अधिकार जमा रहा है, शरीर चंचल वासनाओं और निरन्तर परिवर्तन के अधीन है, इसलिये इस दुष्ट अगिया-बैताल से मैं अपनी अभेदता कभी नहीं मानने का। बीमारी में एकाग्रता और आन्तरिक शान्ति बड़ी ही उत्कट हो जाती है। वह नर या नारी, जिसकी बन्द मुट्ठी शारीरिक रोगों आदि सरीखे क्षणिक अतिथियों का उचित सत्कार करने में आनाकानी करती है, वास्तव में बड़ी ही सूम हैं।

"राम सदा हम लोगों से कहा करते थे, 'हर घड़ी ऐसा अनुभव करो कि, जो शक्ति सूर्य और नक्षत्रों में अपने को प्रकट करती है, वही मैं हूँ; वही, वही तुम हो। इस वास्तविक आत्मा को अर्थात् अपने इस गौरव को लो, ऐसे अमर जीवन का चिन्तन करो, अपनी

इस असली सुन्दरता पर मनन करो और तुच्छ शरीर के समस्त विचारों और बन्धनों को साफ भूल जाओ, मानो तुम्हारा इन मिथ्या और दिखाऊ वास्तविकता (बल्कि छायाओं) से कभी कोई सम्पर्क ही नहीं था। न कोई मृत्यु है, न रोग, न शोक। पूर्ण आनन्दमय जीवन पर नित्य ध्यान दो। पूर्ण मंगलमय, पूर्ण शान्तिमय बनो। तुच्छ आत्मा या शरीर से परे होकर खूब सावधान रहो।' यही शिक्षा वे हर एक को देते थे।

× × × ×

"वह कैसी वीर, सत्यनिष्ठ, भक्त और ईश्वरोन्मत्त आत्मा है जो बिना पैसा-कौडी के अपने देश के लिए विदेश जाने का साहस करे।

× × × ×

"राम जैसे शुद्ध मनुष्य से भेंट करने तथा बातचीत करने और उसे सहायता देने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ, यह विचार आश्चर्यमय है। वे ऊषा (Aurora) की सन्तान थे, और सूर्योदय से सूर्यास्त तक अपना संगीत सुनाया करते थे। उन्हें जरा सी भी परवाह नहीं थी कि घड़ी में क्या समय आया, और लोगों का क्या भाव है, अथवा वे थक गये हैं या नहीं—उनके लचीले और शक्तिशाली विचार सूर्य की चाल से चलते थे, और इस प्रकार दिन उनके लिए चिरस्थायी प्रातःकाल बना रहता था। थोरो (Thoreau) ने कहा है कि—"शारीरिक श्रम के लिए तो लाखों जागे हुए हैं परन्तु करोड़ों में कहीं एक काव्यमय दैवी जीवन के लिए सचेत होता है।" (The millions are awake enough for physical labour, but only one in a hundred millions for a poetic

and divine life.) । राम एक ऐसी दुर्लभ आत्मा थे जो समय-समय पर ही संसार में आती है ।

"They say the Sun is but His photo,
They say that Man is in His image,
They say He twinkles in the stars,
They say He smiles in fragrant flowers,
They say He sings in nightingales,
They say He breathes in cosmic air;
They say He weeps in raining clouds,
They say He sleeps in winter nights,
They say He runs in prattling streams,
They say He swings in rainbow arches,
In floods of light, they say, He marchs."
So Rama told us and it is so.

कहते हैं सूर्य उसका छाया-चित्र मात्र है,
कहते हैं मनुष्य उसकी प्रतिमा है,
कहते हैं वह तारों में चमकता है,
कहते हैं वह सुगंधित फूलों में मुस्कराता है,
कहते हैं वह बुलबुलों में गाता है,
कहते हैं वह विश्व-पवन में श्वांस लेता है,
कहते हैं वह बरसते बादलों में रोता है,
कहते हैं वह जाड़े की रातों में सोता है,
कहते हैं वह धड़धड़ाती नदियों में दौड़ता है,
कहते हैं वह इंद्र-धनुष की मेहराबों में झूलता है,

कहते हैं, वह प्रकाश की बहिया में यात्रा करता है।

ऐसा ही राम ने हम से कहा और बात भी यही है।

आध्यात्मिक दृष्टि से वे केवल एक विचार के मनुष्य कहे जा सकते हैं। उनके सब उपदेशों में जो महान् विचार अन्तर्धारा की तरह बह रहा है वह है देहाध्यास (अहंकार) का त्याग और अपनी आत्मा को सृष्टि की आत्मा अनुभव करना। यही है उस उच्च जीवन का अनुभव, जिसमें परिच्छिन्न 'मैं' भूल जाती है और विश्व-ब्रह्माण्ड की 'मैं' मनुष्य की अपनी 'मैं' बन जाती है। "जो कुछ तू देखता है, वही तू है"। मनुष्य परमात्म-देव है। मिथ्या अहंकार ही सब बन्धनों का कारण है। इसे दूर करते ही मनुष्य की आत्मा सर्वत्र और सबमें व्यापक सार्वभौम आत्मा बन जाती है। इस उच्च जीवन का अनुभव प्राप्त करना है और वे सभी उपाय राम को अङ्गीकार हैं, जिनसे इसकी प्राप्ति हो सकती है। काँटों का बिस्तर हो या फूलों की सेज, जिससे भी हम आत्मानुभव की अवस्था प्राप्त कर सकें, वही धन्य है। आत्मसंयम वा इन्द्रिय-निग्रह इस अनुभव की आवश्यक पहली दशा है, जो विभिन्न व्यक्तियों द्वारा विभिन्न-विभिन्न उपायों से किया जा सकता है। किसी एक व्यक्ति के विकास निमित्त आवश्यक विशेष विचार और विश्वास के निजी संस्कारों और साधनों पर राम कदापि आग्रह नहीं करते; परन्तु अपने मुख्य सिद्धान्तों का सामान्य ढाँचा हमारे सामने रखने की चेष्टा करते हैं, और उन उपायों का निरूपण करते हैं जिनसे उन्हें अत्यन्त सहायता मिली थी। जब कभी बुद्धि उनके आदर्श में शङ्का करती थी, तो वे पूर्व और पश्चिम के अद्वैतवादी तत्त्वज्ञान के क्रम-पूर्वक अध्ययन द्वारा उसका समाधान कर देते थे, और इस प्रकार बुद्धि को उनके सत्य के सामने झुकना

पड़ता था। उनके दार्शनिक मत पर तर्क-वितर्क करने के अभिप्राय से समीप आनेवाले लोगों से वे इसी प्रकार नियमित रूप से दर्शन-शास्त्र का अध्ययन करने को कहते थे। और इस आधार पर वाद-विवाद करना बिलकुल अस्वीकार करते थे। वाद-विवाद के द्वारा नहीं, किन्तु वास्तविक, उत्कट और गम्भीर चिन्तन द्वारा ही सत्य की प्राप्ति हो सकती है।

जब हृदय राम के आदर्श में संशय करता था, तो वे विभिन्न भावों द्वारा उसे उच्चतम प्रेम से सींच देते थे, और ऐसा अनुभव करा देते थे कि "सब कुछ एक ही है, और प्रेम को द्वैत से कुछ मतलब नहीं"। चित्त के द्वारा वे बुद्धि को भावमयी बनाते थे और बुद्धि के द्वारा चित्त को विचारशील बनाते थे। परन्तु सत्य उनके ध्यान में सर्वोपरि था और इन दोनों से ऊँचा था। केवल अपनी ही बुद्धि और चित्त से सहमत होने के लिए वे इस विधि का आश्रय नहीं लेते थे, परन्तु दूसरों से भी सहमत होने के लिए इसी क्रिया का प्रयोग करते थे। जब किसी का उनसे बुद्धि के कारण मतभेद होता था, तो वे उसके साथ प्रेम के प्रसार से वाद-विवाद त्याग देते थे और इस प्रकार उससे वह एकता या मतैक्य प्राप्त करते थे, जिसको वे सत्य की प्रतिमा मानते थे और जिसका त्याग वे किसी हालत में भी करने को तैयार नहीं थे। जब किसी मनुष्य के चित्त का उनसे मतभेद होता था, तो चित्त के क्षेत्र को छोड़ कर वे उससे बुद्धि द्वारा मिलाप करते थे। वे एक ऐसे मनुष्य थे जिनसे किसी का मतभेद नहीं हो सकता था। यदि उनके विचार प्रभावित करने में असमर्थ होते थे, तो उनकी पवित्रता और प्रेम का प्रभाव आप पर अवश्य पड़ता था। बिना उनसे बातचीत किये ही आपको प्रतीत होता कि आप उनसे प्रेम किये बिना नहीं रह सकते। इस प्रकार समस्त वाद-विवाद उनके सामने

शान्त हो जाते थे। और मेरा विश्वास है कि ऐसे मनुष्य के लेख छोटे दर्जे की समालोचना के अयोग्य हैं, क्योंकि आपसे एकमत होना और एकता स्थापित करना उनका मुख्य उद्देश्य है। आप कोई भी हों, वे तुरन्त वही मानने के लिए तैयार हो जायँगे जो कुछ उनसे मनवाने का आपका विचार होगा।

अन्त में मैं वेदान्त शब्द का अर्थ समझाना चाहता हूँ जो उनके लेखों में बारम्बार आता है। जिस वेदान्त शब्द का स्वामी राम बड़े प्रेम से व्यवहार करते हैं, वह उनके लिए अनेकार्थवाची है। धर्म या दर्शन-शास्त्र के किसी विशेष मत के अर्थ में व्यवहार करके वे उसके भाव को संकीर्ण नहीं बनाना चाहते। यद्यपि किसी कारण से उन्हें इस शब्द से प्रेम होगया था, तथापि वे इसे सदा बदल डालने को तैयार रहते थे, परन्तु जिस भाव को वे इस शब्द से ग्रहण करते थे उसे त्यागने को कभी तैयार नहीं होते थे। इस वस्तुस्वातन्त्रवादी (realist) के लिए गुलाब का नाम कोई चीज नहीं था, इन्हें तो गुलाब और उसकी सुगन्धि से काम था। उनकी शिक्षाओं को समझने और आदर की दृष्टि से देखने के लिए हमें आध्यात्मिक बारीकियों की भूल-भुलैयों में जाने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि दिन के उज्ज्वल प्रकाश में जीवन के पथों पर हमारे साथ चलते-चलते वे अचानक हमें पकड़ लेते हैं ; और उदय होते सूर्य की प्रभा में, गुलाब के खिलने में और मोती समान ओस-कणों की भंगुरता में वे हमें वेदान्त की शिक्षा देते हैं। उनके साथ चलते-चलते उनकी शिक्षाओं की प्रतिध्वनियाँ हमें प्रसन्न पक्षियों के आलाप में, बरसते हुए पानी के रसभरे संगीत में, और मनुष्य तथा पशु-पक्षी-सभी के जीवन-स्पन्दों में सुनायी देती हैं। प्रभात में फूलों का खिलना मानों उनकी बाइबिल (धर्मग्रन्थ) का खुलना है। सांझ में तारों का चमकना मानों उनके वेदों का प्रकट होना है। बहुरंगे जीवन

के जीते-जागते व्यक्तियों में उनका अलकुरान मोटे अक्षरों में लिखा हुआ है ।

''समय और विचार मेरे पैमाने थे,
उन्होंने अपने रास्ते खूब बनाये,
उन्होंने समुद्र को भरा और पत्थर,
चिकनी मिट्टी तथा सीप की तहों को पकाया ।''

"Time and thought were my surveyors,
They laid their courses well
They poured the sea and baked the layers,
Of granite, marl and shell."

मानव-हृदय रूपी कमल के दल उनके प्रमाण के पन्ने थे और उन्हें पता लग गया था कि प्रत्येक नर और नारी ने अपने आप में वेदान्त के अर्थों को स्थान दे रक्खा है । हर एक उन्नति करती हुई जाति इस सत्य का समर्थन करती है, और हर एक मरती हुई जाति इसके अनुभव का अभाव प्रकट करती है । प्रत्येक वीर (महापुरुष) इसके प्रकाश का द्योतक है । प्रत्येक महात्मा इसकी दमक फैलाता है । प्रत्येक कवि इसके गौरव का स्वाद लेता है, प्रत्येक चित्रकार (कारीगर) अपने नेत्रों से इसे अति हर्ष के आँसुओं में बहाता है । कोई प्रफुल्लित और सन्तुष्ट मुख देखते ही राम उसे वेदान्ती-मुख की उपाधि दे देते थे । कभी किसी ऐसे विजयी का सामना उनसे नहीं हुआ जिसे उन्होंने व्यावहारिक वेदान्ती न कहा हो । जापानियों का दैनिक जीवन देखकर उन्हें वे अपने वेदान्त का अनुयायी कहने लगे । अमेरिकनों के एल्पस् (Alps) और अन्य पहाड़ों पर चढ़ने तथा नियागरा की तेज धारा को तैरकर पार जाने के साहसपूर्वक कठिन कृत्यों को वे वेदान्ती भावना का प्रकाश समझते थे । जब वे यह समाचार पढ़ते कि कुछ व्यक्तियों ने अपने शरीरों को

वैज्ञानिक अनुसन्धान निमित अँगच्छेद (vivisection) कराने को अर्पण किया है, तो उन्हें यह अपने तत्वज्ञान का व्यावहारिक स्वरूप सिद्ध होता दिखायी देता। ऐसे अवसरों पर उनका चेहरा दमकने लगता था और नेत्रों में आँसू भर आते थे, और वे कहते थे, "सचमुच यह सत्य की सेवा है"। सच्ची लोकतन्त्रता (democracy) और सच्चे साम्यवाद (socialism) के आधुनिक आदर्शों में स्वामी राम को पूर्वीय वेदान्त की अन्तिम विजय दिखायी देती थी।

आन्तरिक पुरुष, आन्तरिक प्रकृति की मुख्य एकता के सत्य पर खड़े होकर वे कहते हैं, केवल वही जीते हैं जो प्रेम की विश्व-व्यापी एकता का अनुभव करते हैं। जीवन के सच्चे सुख केवल उन्हीं को मिलते हैं जो भूमि-कमल (lily) और नीले पुष्प (violet) की नसों के खून को अपना ही मानते हैं। अपने आप में सब चीजों को और सब चीजों में अपने आपको देखना ही असली आँखवाला होना है, जिसके बिना प्रेम और सुंदरता आकर्षक हो ही नहीं सकतीं। और बिना प्रेम या आकर्षण के, वे पूछते हैं, जीवन है ही क्या ? इस भावना में जब किसी व्यक्तिगत-जीवन को वे शरीर और चित्त से ऊपर उठते देखते हैं, तो उन्हें आकाश में इन्द्र-धनुष दिखायी देता है और अपार हर्ष से वे उछल पड़ते हैं। बुद्धि द्वारा वेदान्त के सिद्धान्तों का मान लिया जाना ही उनके लिए वेदान्त नहीं है। वे प्रेम की पवित्र वेदी पर गम्भीरतापूर्वक शरीर और चित्त की शुद्ध भेंट को वेदान्त समझते हैं। दर्शन-शास्त्र और तर्क, पुस्तक और प्रमाण, पाण्डित्य और अलङ्कार-विद्या से बुद्धि की अनुमति पुष्टि पाकर बढ़ सकती है, किन्तु इन उपायों से राम के वेदान्त की प्राप्ति किसी को नहीं हो सकती। शरीर और मन का अमली और सच्चा त्याग तभी होता है, जब चित्त में प्रेम की ज्वाला प्रदीप्त होती है। शरीर का मानसिक त्याग और शरीर की हर

एक नस का प्रेम चरणों में अर्पण और प्रेममयी सेवा में चित्त का समर्पण मनुष्य के भीतरी स्वर्ग के कपाट खोल देता है। राम का वेदांत उस दिव्य चेतनता की सुंदर शान्ति है जो कि शरीर और चित्त के बन्धनों से मुक्त है, जहाँ वाणी मूक हो जाती है, जहाँ सूर्य और चन्द्र का लोप हो जाता है, जहाँ समग्र दृष्टि स्वप्न की तरह हिलोरे लेकर अनंत में चक्कर लगाती है। इस स्थान से राम नीचे सीढ़ी लटकाते हैं कि हम उन तक पहुँच सके और वहाँ से नीचे की दुनिया के दृश्य देख सकें। अक्षय शान्ति वहाँ बँट रही है और वहाँ मनुष्य पूरी तरह ईश्वर में लीन हो जाता है। वहाँ सब तर्क-वितर्क बंद हो जाता है। वहाँ जो भी हैं अपने चारों ओर केवल देखते और मुसकराते हैं, और हरेक से कहते हैं, "तू अच्छा है" "तू विशुद्ध है", "तू पवित्र है", "तू ही वह है"।

Neither the sun shines there, nor sparkles the
moon,
Pranas and sound are hushed into Silence,
All life reposes in Soul's Sweet Slumber,
No God, no man, no cosmos there, no soul,
Naught but golden Calm and Peace and
Splendour.

न वहाँ सूर्य चमकता है, न चन्द्र जगमगाता है,
प्राण और शब्द मौन हैं,
आत्मा की मधुर निद्रा में सम्पूर्ण जीवन आराम कर रहा है,
न वहाँ ईश्वर है, न मनुष्य, न जगत् है, न जीव,
स्वर्णमयी शान्ति, स्थिरता और प्रकाश के सिवा वहाँ कुछ नहीं है।

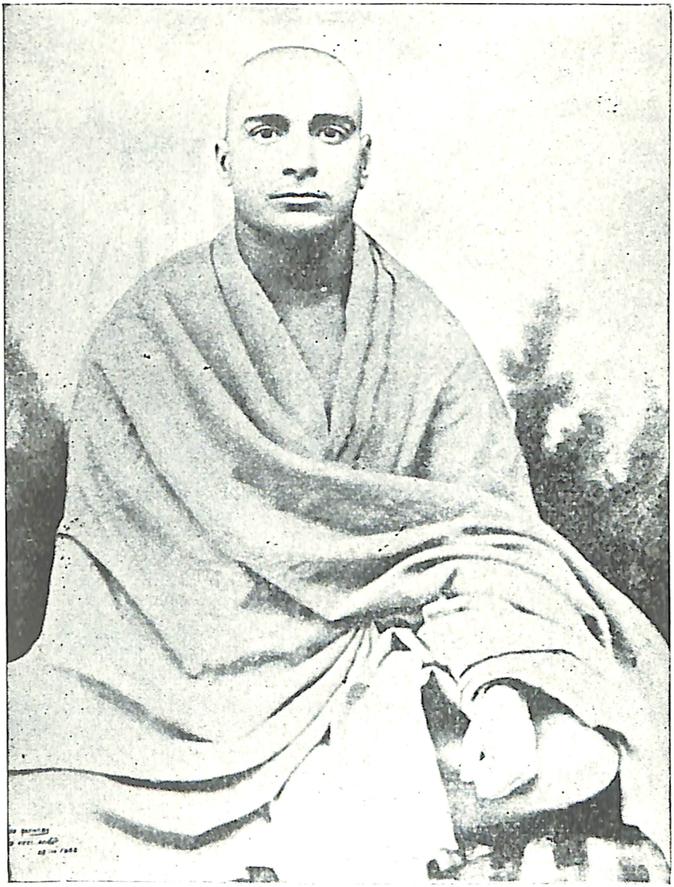
ओम् ! ओम् !! ओम् !!!

पूर्णसिंह

भीतरी ध्रुवतारा

The Pole-Star Within

ॐ



स्वामी रामतीर्थ

1873–1906

स्वामी रामतीर्थ

—०**:✽:**०—

आनन्द

—:०:—

ता० १७ दिसम्बर १९०२ को सनफ्रांसिस्को की विज्ञान-सभा में दिया हुआ व्याख्यान।

—:*✽*:—

महिलाओं और भद्रपुरुषों के रूप में मेरे ही आत्मन्!

आनन्द ही सबका अन्तिम साध्य है

राम यूरोपीय और ईसाई राष्ट्रों को इसलिए दोष नहीं देता कि वे अपनी सेनाओं और सैन्यदलों से अन्य राष्ट्रों को क्यों विजय कर रहे हैं। किसी समय राष्ट्र की आध्यात्मिक उन्नति में यह भी एक आवश्यक अवस्था होती है। भारत को यह अवस्था व्यतीत करनी पड़ी थी; किन्तु बहुत प्राचीन जाति होने के कारण उसने सांसारिक सुखों को तराजू में तौला और निस्सार पाया। जो राष्ट्र आजकल सांसारिक ऐश्वर्य और सम्पत्तियों

के संग्रह में लिप्त हैं, उन्हें भी यही अनुभव होगा। ये सभी राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों को अधीन करने के लिए अपनी सेनाओं से चढ़ाई करने का प्रयत्न क्यों कर रहे हैं? इन बातों में ये क्या ढूँढ रहे हैं? केवल आनन्द, सुख और हर्ष ही ढूँढा जा रहा है। यह सत्य है कि कुछ लोग कहते हैं, हम सुख की नहीं, किन्तु ज्ञान की खोज में हैं। दूसरे कहते हैं, हम सुख की नहीं, किन्तु काम-काज की तलाश में हैं। ये सब बातें बहुत ठीक हैं; किन्तु सामान्य मनुष्यों और साधारण प्राणियों के मनों और हृदयों को टटोलिये। आप को पता लगेगा कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रीति से, जानकर या अनजाने, जिस अन्तिम उद्देश्य को उन्होंने अपने सामने रक्खा है, जिस अन्तिम लक्ष्य के लिए वे सब प्रयत्न कर रहे हैं, वह है केवल आनन्द, एकमात्र आनन्द!

आइये, आज यह विचार करें कि आनन्द कहाँ रहता है; वह महल में रहता है या झोंपड़े में, वह कामिनियों की क्रांति में है अथवा सोने और चाँदी से मोल ली जा सकने वाली वस्तुओं में, आनन्द का जन्म-स्थान कहां है! आनन्द का भी अपना एक स्वतंत्र इतिहास है। यह बड़े-बड़े भ्रमणों का समय है। वाष्प और विद्युत् ने देश और काल का उच्छेद कर दिया है। ये लम्बी यात्राओं के दिन हैं, और हर एक अपनी यात्रा का वृत्तान्त लिख डालता है। आनन्द भी यात्रा करता है। उसकी यात्रा का कुछ हाल हमें जानना चाहिए।

आनन्द का इतिहास

लो, हम आनन्द की प्रथम झलक से आरम्भ करते हैं, जो बच्चे को उसकी बाल्यावस्था में मिलती है। शिशु के लिए तो संसार का सारा सुख उसकी माता के आँचल में, प्यारी माता के आँचल में या प्यारी माता की गोद में समाया रहता है। उसके लिए तो सम्पूर्ण आनन्द वहीं है। जिस प्रधान मार्ग पर आनन्द को यात्रा करनी है, उसका पहला पड़ाव माता का आँचल या माता

की गोद है ! गोद के बच्चे के लिए इस दुनिया में माता की गोद से बढ़ कर आनन्ददायक वस्तु और कोई नहीं है। बच्चा माता के आँचलों में अपना मुँह छिपा कर कहता है, "माँ ! मां ! देख ! मैं कहाँ हूँ ?" और प्रसन्न हो हँसता है। वह जी खोल कर खूब हँसता है। पुस्तकें बच्चे के लिए निरर्थक हैं। खजाने उसके लिए व्यर्थ हैं। जिस बच्चे का अभी दूध नहीं छूटा, उसके लिए फलों और मिठाइयों में कोई स्वाद नहीं है। उसके लिए सारे संसार का आनन्द माता की गोद में ही एकत्रित है।

देखो, दो-एक वर्ष बीतने पर बच्चे के आनन्द का केन्द्र बदल जाता है। वह हट कर किसी दूसरी जगह चला जाता है। आनन्द अब खिलौनों, सुन्दर गुड्डे-गुड़ियों और बबुओं में निवास करता है। इस दूसरी अवस्था में बच्चा माता को उतना नहीं चाहता जितना अपने खिलौनों को। कभी-कभी बच्चा खिलौनों और बबुओं के लिए प्यारी माता से भी झगड़ा ठानता है।

कुछ महीने या वर्ष और बीतने पर, गुड़ियों और बबुओं में भी उसे आनन्द नहीं मिलता। आनन्द फिर अपना केन्द्र-स्थान बदल देता है। अब इन वस्तुओं में भी उसकी स्थिति नहीं रहती। तीसरी अवस्था में जब शिशु बढ़ कर लड़का हो जाता है, तो आनन्द उसके लिए पुस्तकों में, विशेषत: कहानियों की किताबों में जा ठहरता है। यह एक सामान्यबुद्धि के बालक की बात है। कभी-कभी आनन्द उसके लिए दूसरे पदार्थों में भी होता है, किन्तु हम सामान्य घटना की चर्चा कर रहे हैं। अब बालक का सम्पूर्ण प्रेम और स्नेह कहानी की किताबों में एकाग्र हो जाता है। अब खिलौनों, बबुओं और गुड़ियों का आकर्षण जाता रहा है। कहानी की पुस्तकों ने उनका स्थान ले लिया। वह पुस्तकों को ही सुन्दर तथा मनोहर मानता है। किन्तु थोड़े समय में ही आनन्द आगे यात्रा करता है।

विद्यालय से आगे लड़का विश्वविद्यालय में प्रवेश करता है।

विश्वविद्यालय के जीवन में उसे किसी दूसरी ही वस्तु में आनन्द मिलता है; वैज्ञानिक पुस्तकें और तात्त्विक ग्रन्थ मान लीजिये। वह उन्हें कुछ समय तक पढ़ता है; परन्तु उसका आनन्द पुस्तकों से चल कर विश्वविद्यालय की उपाधियों और सम्मान पाने के विचारों में जा पहुँचता है। वही उसके आनन्द का निवास स्थान, उसकी प्रफुल्लता का मुख्य धाम, उसकी आकांक्षा है। विद्यार्थी विश्वविद्यालय से कीर्ति पूर्वक निकलता है। वह अच्छी आय का पद प्राप्त करता है। और अब इस युवा पुरुष का सारा आनन्द धन में, ऐश्वर्य में केन्द्रीभूत हो जाता है। अब इस चौथी अवस्था में उसके जीवन का एक मात्र स्वप्न सम्पत्ति सञ्चय करना, वैभवशाली होना बन जाता है। वह बड़ा आदमी बनना, विपुल वसुधा बटोरना चाहता है। और लो, कार्यालय में कुछ महीने काम करने के बाद जब वह कुछ धन पा जाता है, तब उसका आनन्द किसी दूसरी वस्तु पर जा टिकता है। वह कौन सी वस्तु है ? क्या बताने की आवश्यकता है ? वह है रमणी। इस पाँचवीं अवस्था में युवा पुरुष को स्त्री की आकांक्षा होती है, और उसकी प्राप्ति के लिए वह अपनी सारी सम्पत्ति खर्च कर डालने को प्रस्तुत है। माता के आँचल से अब उसे कोई आनन्द नहीं मिलता, खिलौनों में अब उसके लिए कोई मोहिनी नहीं, कहानी की किताबें दूर फेंक दी जाती हैं; और केवल उन्हीं अवसरों पर पढ़ी जाती हैं जब उनसे जीवन के स्वप्न अर्थात् कामिनी की प्रकृति के अनुभव में कुछ सहायता मिलने की आशा होती है। स्त्री के लिए वह सर्वस्व त्याग करने को तैयार है।

विषय-वासना की इन तुच्छ तरंगों के लिए, जो उसके आनन्द का अब मुख्य धाम हो रहा है, कठिन परिश्रम से उपार्जित धन को भी वह लुटा डालता है। युवा कुछ काल तक स्त्री के संग रहता है;

पर देखिये तो सही ! आनन्द अब कुछ आगे दिखायी पड़ने लगता है। प्रारम्भ में अपनी स्त्री के ध्यान से जो आनन्द उसे मिलता था, अब वह नहीं प्राप्त होता। यह साधारण युवक अर्थात् पूर्व के भारत (ईस्ट इण्डिया) के साधारण युवक का उदाहरण है। इस युवक का आनन्द अब स्त्री से चलकर पुत्र-उत्पत्ति में पहुँच जाता है। अब पुत्र उसके जीवन का स्वप्न बन जाता है। वह एक पुत्र के लिए एक फरिश्ता, देवता के लिए व्यग्र होता है। राम इस देश (अमरीका) की दशा से अधिक परिचित नहीं है; किन्तु भारत में विवाह करने के उपरान्त लोग सन्तान के लिए तरसने लगते हैं और तदर्थ ईश्वर से प्रार्थना करते हैं। यथाशक्ति वे कोई बात उठा नहीं रखते, वैद्यों की सहायता लेते हैं और सिद्ध-साधकों से आशीर्वाद की प्रार्थना करते हैं। सारांश यह कि पुत्र से भाग्यवान होने के लिए जहाँ तक हो सकता है वे सभी कुछ उपाय करते हैं।

अब युवक का सारा आनन्द पुत्रोत्पत्ति की आशा में एकत्रित हो जाता है। आनन्द की यात्रा अथवा हर्ष के पर्यटन में छठा पड़ाव पुत्र है। फिर युवक जब पुत्र-लाभ से भाग्यवान होता है, तो उसके आनन्द की कोई सीमा नहीं रहती, हृदय गद्‌गद् होता है, वह उछल पड़ता है, फूल कर कुप्पा हो जाता है, मानों भूमि से कई हाथ ऊपर उठ गया है, वह चलता नहीं है, मानों हवा में उड़ता है। पुत्र-लाभ उसके अन्त:करण को आनन्द से परिपूर्ण कर देता है। इस छठी अवस्था में युवक का आनन्द उक्त पुत्र के चन्द्रमुख में एक प्रकार से पराकाष्ठा को पहुँच जाता है। जिस क्षण वह अपने पुत्र का मुख देखता है, वह अत्यन्त आनन्द का समय होता है। लो, साधारण मनुष्य का आनन्द अपनी चरम सीमा को पहुँच गया। इसके पश्चात् युवक का उत्साह कम होने लगता है। बच्चा किशोरावस्था को

प्राप्त होता है, और आकर्षण वहाँ से भी खिसकता है। बस, मनुष्य का आनन्द योंही यात्रा करता रहता है; कभी यहाँ ठहरा, कभी वहाँ ठहरा।

आनन्द का उद्गम स्थान

अब हमें विचारना चाहिए कि क्या सचमुच आनन्द ऐसी वस्तुओं में अर्थात् माता के आँचल, गुड्डे-गुड़ियों, पुस्तकों, वैभव, स्त्री और पुत्र में, अथवा किसी भी सांसारिक प्राणी या पदार्थ में है? आगे बढ़ने से पूर्व, आओ, भ्रमणशील आनन्द की गतिशील सूर्यप्रकाश से तुलना करें। प्रभाकर की प्रभा भी यहाँ से वहाँ बिचरती रहती है। एक समय यदि भारत को प्रकाशित करती है तो दूसरे समय यूरोप को। वह आगे ही बढ़ती है। जब सायंकाल की छाया पड़ती है, तब देखो, कितनी शीघ्रता से सूर्य-प्रभा स्थान बदलती है। अभी पूर्वीय अमेरिका में चमकती है और वहाँ से पश्चिम की ओर बढ़ती है। देखिये, सूर्य-प्रकाश कैसा अँगूठों के बल फुदकता फिरता है, इस देश से उस देश में बिछलता हुआ वह जापान में अपनी जगमगाहट फैलाता है, इसी तरह और आगे-आगे। सूर्य-प्रभा एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करती रहती है; किन्तु ये विभिन्न स्थान, जहाँ सूर्य-ज्योति दिखायी पड़ती है, उसके उद्गम या निवास स्थान नहीं है। सूर्य-ज्योति का निवास स्थान तो कहीं अन्यत्र है; सूर्य में। सूर्य-प्रभा की भाँति इधर-से उधर निरन्तर गमनशील आनन्द की परीक्षा भी हमें इसी प्रकार करनी चाहिए। आनन्द कहाँ से आता है! उसका वास्तविक घर कहाँ है? आनन्द के सूर्य की ओर हमें देखना होगा।

पुत्र से धन्य होने वाले भद्र पुरुष का उदाहरण ले लीजिये। वह अपने कार्यालय में बैठा हुआ है। अपने कार्य में प्रवृत्त है। एकाएक उसे घंटी की टनटन सुनायी देती है। कौनसी घंटी? टेलीफोन की घंटी! वह झपट कर टेलीफोन के पास पहुँचता है; परन्तु संदेश सुनने

के समय उसका कलेजा धड़कने लगता है। कहावत है कि आने वाले संकटों की छाया पहले ही से पड़ने लगती है। उसका हृदय धड़क रहा है, पहले तो कभी ऐसा नहीं हुआ था। वह टेलीफोन के पास पहुँच कर संदेश सुनता है। राम राम ! बड़ा ही दुखदायी समाचार रहा होगा। बेचारा भद्रपुरुष सिसकियां ले लेकर कराह रहा है, उसकी सुध-बुध जाती रही, चेहरे का रंग उड़ गया, पीला, मुर्दनी छाया हुआ मुख लेकर वह झट अपने आसन पर आया, कोट पहना और टोपी दी और कार्यालय से चल दिया, मानों उसे बन्दूक की गोली लग गयी है। उसने अपने प्रधान से, कार्यालय के अध्यक्ष से भी अनुमति नहीं ली। कमरे में उपस्थित कर्मचारियों से भी उसने कोई बात तक नहीं कही। अपनी टेबिल पर फैले हुए कागज-पत्रों को भी समेट कर उसने बन्द नहीं किया। उसका ज्ञान-ध्यान सब जाता रहा, बस, सीधा कार्यालय से चल दिया। उसके साथी चकित रह गये। सड़क पर पहुँच कर अपने सामने उसने एक गाड़ी जाती देखी। वह दौड़ कर गाड़ी के पास पहुँचता है और वहाँ डाकिया उसे एक पत्र देता है। इस पत्र में उसके लिए यह समाचार था कि वह एक बड़ी सम्पति का स्वामी हुआ है। सांसारिक दृष्टि से यह संवाद कदाचित् सुखकर हो सकता है। इस मनुष्य ने एक चिट्ठी (Lottery) डाली थी और डेढ़ लाख रुपया उसके नाम में निकला था। इस समाचार से उसे प्रसन्न हो जाना चाहिए था। आनन्द से नाच उठना चाहिए था; किन्तु ऐसा नहीं हुआ, ऐसा नहीं हुआ। टेलीफोन से प्राप्त संदेश उसके हृदय को मसोस रहा था। इसलिए नये समाचार से वह सुखी नहीं हुआ। इस ट्राम गाड़ी में उसने एक बहुत बड़े राज्य अधिकारी को ठीक अपने सामने बैठा पाया। यह वही अधिकारी था, जिससे भेंट करना उसके जीवन का एक स्वप्न हो रहा था; किन्तु देखो तो इस भद्र पुरुष ने उस राज्य-कर्मचारी से नजर भी नहीं मिलायी,

अपना मुंह फेर लिया। एक महिला-मित्र का मधुर मुख भी उसे दिखायी पड़ा। हमारे भद्रपुरुष को इस महिला से मिलकर बातचीत करने की लालसा रहा करती थी। किन्तु इस समय उसकी मधुर मुस्कान के प्रति वह उदासीन रहा। अस्तु, अब हमें उसे अधिक काल तक संदिग्धावस्था में रखना उचित नहीं है और न आप ही को देर तक सन्देह में रखना चाहिए। जिस सड़क पर इसका घर था वह वहाँ पहुँच गया। बड़ा हल्ला-गुल्ला हो रहा था। उसने देखा कि धुएं के मेघ आकाश में चढ-चढ़ कर सूर्य को ढक रहे हैं। उसने देखा कि अग्नि-शिखायें आकाश का चुम्बन कर रही हैं। उसने अपनी स्त्री, दादी, माता तथा अन्य मित्रों को अग्नि-काण्ड के कारण, जिससे उनका घर स्वाहा हो रहा था, रोते और हाय-हाय करते देखा। उसने अपने और सब स्नेहपात्रों को देखा तो वहाँ केवल एक को न पाया। उन दिनों उसके आनन्द का एकमात्र केन्द्र गायब था; प्रिय पुत्र, मधुर छोटा शिशु लुप्त था। वही वहाँ नहीं था। उसने पुत्र के सम्बन्ध में पूछा; किन्तु स्त्री कोई उत्तर न दे सकी। रोना और सिसकना ही उसका प्रत्युत्तर था, जो अबोध्य न था। सत्य का उसे पता लग गया। उसे मालूम हुआ कि पुत्र घर ही में छूट गया। आग लगने के समय बच्चा अपनी धाय के पास था। धाय बच्चे को पालने में सुला कर कमरे से चली आयी थी। आग से जलता देख घरवाले घबड़ाकर जल्दी में निकल भागे। सबने यही समझा कि बच्चा किसी न किसी घर वाले के पास होगा। सबके सब निकल भागे और अब उन्हें मालूम हुआ कि बच्चा उसी कमरे में रह गया, जिसे अब अग्नि आवृत्त कर रही है। लोग रो रहे थे, दांत कटकटा रहे थे, ओंठ काट रहे थे, छाती पीट रहे थे, किंतु कोई वश न चलता था। हमारा भद्रपुरुष, उसकी स्त्री, उसकी माता एवम् मित्र और धाय चिल्ला-चिल्ला कर एकत्रित जनसमूह से; पुलिसमैनों से, लोगों से अपने प्रिय छोटे बच्चे को बचाने

की प्रार्थना कर रहे थे। जिस तरह हो सके हमारे छोटे बच्चे को निकालो। हम अपनी सब सम्पति दे देंगे, आज से दस वर्ष तक जितना धन सञ्चय करेंगे, दे देंगे। हम सब कुछ भेंट कर देंगे, हमारे बच्चे को बचाओ, हमारे बच्चे को बचाओ। (आपको याद होगा कि यह दुर्घटना ऐसे देश में हुई थी, जहाँ फायर इन्श्योरेंस कम्पनियां उस परिमाण में नहीं हैं जिस परिमाण में इस देश में हैं।) वे बच्चे के लिए सब कुछ दे डालने को तैयार हैं। सचमुच पुत्र ऐसी ही मधुर वस्तु है, शिशु बड़ी ही प्रिय वस्तु है, और इसी योग्य है कि सम्पूर्ण सम्पति और वसुधा उसके लिए निछावर कर दी जाय; किंतु राम का प्रश्न है, "क्या पुत्र आनन्द का मूल साधन है, संसार में सबसे अधिक प्रिय वस्तु है अथवा आनन्द की जड़ कहीं और ही है ? ध्यान दीजिये। प्रत्येक वस्तु प्रिय पुत्र के लिए अर्पण की जा रही है, किंतु क्या किसी प्रियतर, किसी अन्य वस्तु के लिए स्वयं पुत्र का बलिदान नहीं किया जा रहा है ? पुत्र के लिए दौलत दी जा रही है, सम्पति दी जा रही है, किंतु पुत्र किसी दूसरी ही वस्तु के लिए चढ़ाया जा रहा है। आग में फांदने का जो लोग साहस करें उनके प्राण चाहे चले जांय किंतु वह प्यारा शिशु किसी दूसरी वस्तु पर, किसी उच्चतर वस्तु पर निछावर किया जा रहा है। यह अन्य वस्तु अवश्य ही पुत्र से भी बढ़कर प्रिय होगी, यही अन्य वस्तु वास्तविक केन्द्र होगी, आनन्द का वास्तविक उद्गम स्थान होगी। यह अन्य वस्तु क्या है ? विचारिये तो सही ? वे स्वयं आग में नहीं कूद पड़े। यह अन्य वस्तु अपना आप (आत्मा) है। यदि वे स्वयं आग में कूदते हैं, तो अपने को भेंट चढ़ाते हैं, और यह करने को वे तैयार नहीं हैं। अन्य सब चीजें तो पुत्र पर निछावर हैं, और पुत्र उस अपने आप पर निछावर है।

अब हमें पता लग गया कि आनन्द की सर्वोपरि अवस्था, परम प्रिय पुत्र में नहीं है। पुत्र सुन्दर, प्रिय, और आनन्द का मूल

आनन्द का उद्गम-स्थान आत्मा है

इसलिए बना हुआ है कि वह उस ज्योति से सुशोभित है, जो आत्मा (Self) से निर्गत होती है। ज्योति स्वयं पुत्र में आलथी पालथी लगाये हुए नहीं है। यदि आनन्द-रूपी ज्योति पुत्र में अन्तर्निहित (inherent) होती, तो पुत्र के शरीर में वह सदा बनी रहती। सत्य तो यह है कि पुत्र के मुख को उद्भासित करने वाली ज्योति अपने भीतर के सरोवर, आत्मा से निकलती थी। आनन्द का वास्तविक उद्गम-स्थान अपना आत्मा है।

अब हम आनन्द के घर, आनन्द के मूल स्थान के कुछ निकट पहुँच गये हैं। पुत्र इसलिए प्यारा नहीं है कि वह पुत्र है, पुत्र आत्मा के लिए प्यारा है। स्त्री, स्त्री के लिए प्यारी नहीं है, पति, पति के लिए प्यारा नहीं है, स्त्री आत्मा के लिए प्यारी है, पति आत्मा के लिए प्यारा है। यथार्थ बात यही है। लोग कहते हैं कि वे किसी वस्तु को उसी के लिए प्यार करते हैं; किन्तु ऐसा नहीं हो सकता, नहीं हो सकता। दौलत दौलत के लिए प्यारी नहीं है, दौलत प्यारी है आत्मा के लिए। जब स्त्री से, जो एक समय प्यारी थी, काम नहीं चलता, तब उसे पति तलाक

---

* "न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति। न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति। न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्राः प्रिय भवत्यात्मनस्तु कामाय पुत्राः प्रिया भवन्ति। न वा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं भवति। न वा अरे पशूनां कामाय पशवः प्रिया भवन्ति आत्मनस्तु कामाय पशवः प्रिया भवन्ति न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति'॥ (बृहदारण्यकोनिषद, अध्याय ४, ब्राह्मण ५ याज्ञवल्क्य और मैत्रैयी संवाद में छठा मंत्र)

दे देता है। इसी तरह पति से जो एक समय प्यारा था, जब काम नहीं चलता, तब स्त्री उसे त्याग देती है। जब दौलत से काम नहीं चलता, वह छोड़ दी जाती है। आप नीरो राजा का हाल जानते हैं कि उसे रोम की सुन्दर नगरी, अपनी राजधानी अधिक काम की अथवा अधिक रोचक नहीं जान पड़ी। उसके लिए तो एक अग्नि-काण्ड के प्रकाण्ड उत्सव-दहन को देखना अधिक रुचिकर था। देखो ! वह एक निकटवर्ती पहाड़ की चोटी पर चला गया, और विशाल अग्नि-काण्ड के दृश्य का सुख लूटने की इच्छा से अपने मित्रों को सारे नगर में आग लगा देने की आज्ञा दी। रोम भस्म हो रहा था और नीरो चिकारा बजा रहा था। इस प्रकार हमें पता लगता है कि वैभव भी त्याग दिया जाता है, जब उससे हमारा काम नहीं चलता। राम ने एक अति विचित्र घटना अपनी आखों से देखी है। एक समय गंगा नदी में बड़ी बाढ़ आरही थी, नदी चढ़ती ही चली जाती थी। एक वृक्ष की शाखा पर अनेक बन्दर बैठे हुए थे। इनमें एक बंदरिया भी थी और उसके कई बच्चे। ये सब बच्चे अपनी मां के पास चले आये। बंदरिया जहां बैठी थी, वहां तक पानी पहुँच गया। वह उचक कर एक और ऊँची डाल पर चली गयी। वहां भी पानी पहुँच गया। वह सबसे ऊंची टहनी पर चढ़ गयी, किंतु जल वहां भी पहुँच गया। सब बच्चे अपनी मां के अंग में चिपटे हुए थे, जब पानी उसके पैरों तक चढ़ गया तो उसने एक बच्चे को पकड़ कर अपने पैरों तले रख लिया। पानी और भी चढ़ा। बंदरिया ने दूसरे बच्चे को भी पकड़ कर अपने पैरों नीचे रख लिया। पानी और भी ऊँचा उठा और अपनी रक्षा के लिए उसने तीसरे बच्चे को भी निर्दयता से पैरों के नीचे दबाया। ठीक यही दशा है। लोग और चीजें हमें उसी समय तक प्यारी हैं जब तक उनसे हमारा स्वार्थ सिद्ध होता है, हमारी इच्छा पूर्ण होती है। उधर हमारे स्वार्थ को धक्का लगने की आशंका हुई इधर हमने सभी चीजों को भेंट चढ़ाया।

मूल स्थान प्रीति का तारतम्य भाव

इस प्रकार हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि आनन्द का आसन, कहीं अपने आप में है। सुख का घर कहीं अपने में तो है ; परन्तु है कहां ? पैरों में ? चरण सकल शरीर के अवलम्ब हैं, उनमें हो सकता है। किन्तु नहीं, चरणों में वह नहीं है, यदि पैरों में आनन्द का घर होता तो पैर संसार की सब वस्तुओं से अधिक प्रिय होते। यह ठीक है कि पैर सब बाहरी वस्तुओं से अधिक प्रिय हैं, परन्तु वे हाथों के तुल्य प्रिय नहीं हैं। तो क्या आनन्द का निवासस्थान हाथों में है ? हाथ पैरों की अपेक्षा प्यारे तो हैं किन्तु वहाँ भी आनन्द का घर नहीं हैं। तो क्या आनन्द नाक या नेत्र में टिका हुआ है ? नेत्र हाथों या नाक से अधिक प्रिय अवश्य हैं, परन्तु आनन्द का अवस्थान उनमें भी नहीं है। किसी ऐसी वस्तु की कल्पना कीजिये जो नेत्रों से भी अधिक प्रिय हो। आप कह सकते हैं प्राण। मैं कहता हूँ, पहले समग्र शरीर को लीजिये। समग्र शरीर भी आनन्द का घर नहीं है। हम देखते हैं कि यह समग्र शरीर भी हम त्यागते रहते हैं, प्रति क्षण बदलते रहते हैं। कुछ ही वर्षों में शरीर के प्रत्येक परमाणु का स्थान नये परमाणु ग्रहण कर लेते हैं। आनन्द का स्थान कदाचित् बुद्धि-मस्तिष्क या मन में हो, सम्भव है। अब यह विचारना है कि बुद्धि से भी प्रियतर कोई वस्तु है या नहीं। आओ, विवेचन करें। यदि बुद्धि से बढ़कर मधुर और प्रिय कोई वस्तु ठहरे तो वही आनन्द का स्थान होगी। हम कहते हैं कि हिन्दू जीवन की शब्दावली में प्राण आनन्द का मूल हो सकता है, क्योंकि मेधाशक्ति खोकर भी प्रायः लोग जीना चाहते हैं। दो विकल्पों में वरण करना है। मृत्यु का आलिंगन कीजिये अथवा विक्षिप्त या बावले होकर जीते रहिये। प्रत्येक मनुष्य पागलपन की दशा में भी जीना ही पसन्द करेगा। इससे विदित हुआ कि प्राण की वेदी पर

बुद्धि या मेधाशक्ति का बलिदान होता है। तो कदाचित् प्राण, व्यक्तिगत प्राण आनन्द का स्थान, सम्पूर्ण आनन्द का जन्मदाता सूर्य्य होगा। अब विचार कीजिये कि प्राण आनन्द का वास्तविक स्थान है या नहीं। वेदान्त कहता है नहीं! नहीं! प्राण भी आनन्द का स्थान नहीं है। आनन्द का आश्रम, भीतरी स्वर्ग और भी ऊंचे पर है। व्यक्तिगत शारीरिक प्राण से भी परे है। तो फिर वह है कहां?

राम ने एक बार एक युवक को ठीक मरते समय देखा। वह एक प्रचण्ड रोग से पीड़ित था। उसके शरीर में तीव्र वेदना हो रही थी, पीड़ा का प्रारम्भ पैर की उँगलियों से हुआ था। वह पीड़ा पहले तीव्र नहीं थी, कुछ देर बाद ज्यों-ज्यों ऊपर चढ़ती गयी, त्यों-त्यों उसका शरीर ऐंठने लगा। धीरे-धीरे घुटनों तक आ गयी, और फिर चढ़ती-चढ़ती पेट तक पहुँची, तथा जब हृदयस्थल में पहुँची तब मनुष्य मर गया। इस युवक के अन्तिम शब्द थे, "ओह! इस जीवन का अन्त कब होगा, प्राण कब पीछा छोड़ेंगे?" ये उस युवक के उद्गार थे। आप जानते हैं, इस देश, अमरीका में आप लोग कहते हैं, उसने रूह (ghost) को छोड़ दिया। भारत में हम लोग कहते हैं, उसने शरीर को छोड़ दिया। इससे यह भेद स्पष्ट होता है कि यहाँ अमरीका में शरीर को आत्मा मानते हैं और रूह (जीवात्मा) को उसमें बँधी हुई कोई वस्तु समझते हैं। भारत में शरीर को आत्मा से भिन्न वस्तु समझते हैं, और वास्तविक आत्मा को तत्व वस्तु मानते हैं। वहाँ शरीर के मरने पर कोई अपने को मृत नहीं मानता, वह मरता नहीं है, केवल चोला बदल डालता है। और इसलिए उस युवक के मुख से ये शब्द निकले थे, "ओह! यह शरीर मैं कब छोड़ूँगा, ये प्राण मुझे कब छोड़ेंगे?"

अब हमें जीवन से बढ़कर, प्राणों से श्रेष्ठ वस्तु का पता लग गया, जो कहती है "मेरे प्राण"; जिसके अधिकार में प्राण हैं, और जो प्राण तथा जीवन से परे है, और वह वस्तु व्यक्तिगत वा शारीरिक जीवन या प्राण से कहीं अधिक मधुर है। अब हम देखते हैं कि उस शरीर विशेष के प्राण से परम आत्मा का हित नहीं साधित हुआ, इसलिए प्राण का बलिदान कर दिया गया, प्राण त्याग दिया गया। इस स्थल में हमें ऐसी एक वस्तु दिखायी पड़ती है जो कि प्राणों से श्रेष्ठ है, जिसके लिए प्राणों का उत्सर्ग कर दिया गया। अवश्य प्राण की अपेक्षा वह कहीं मधुर होगी, आनन्द का मूलस्थान होगी, हमारे आनन्द का मूल या उत्पत्ति-स्थान होगी। अब हमारी समझ में आ गया कि प्राण बुद्धि से मधुरतर क्यों हैं? कारण यही है कि प्राण वास्तविक आत्मा के अर्थात् आपके अन्तर्गत आत्मा के निकटतर हैं। बुद्धि नेत्रों से प्यारी क्यों है? क्योंकि बुद्धि नेत्रों की अपेक्षा वास्तविक आत्मा के अधिक निकट है। और नेत्र पैरों की अपेक्षा प्रियतर क्यों हैं? क्योंकि आपके वास्तविक आत्मा से पैरों की अपेक्षा नेत्रों की अधिक घनिष्टता है। प्रत्येक मनुष्य अपने बच्चे को किसी दूसरे के अथवा पड़ोसी के बच्चे की अपेक्षा कहीं अधिक रूपवान क्यों समझता है? वेदान्त के मत से कारण यही है कि "इस शिशु विशेष को, जिसे आप 'मेरा' शिशु कहते हैं, आपने अपने वास्तविक आत्मा के सोने से कुछ मढ़ लिया है"। कोई भी पुस्तक, जिसमें आपकी लिखी हुई एक पंक्ति है, कोई भी रचना, जिसमें आप की लेखनी से कुछ लेख हैं, आपको किसी और पुस्तक से, चाहे वह प्लेटो (Plato) की ही रची क्यों न हो, कहीं उत्तम मालूम होती है। ऐसा क्यों है? क्योंकि इस पुस्तक में, जिसे आप अपनी कहते हैं, आपके वास्तविक आत्मा की कुछ जगमगाहट है। यह आपके भीतरी स्वर्ग की प्रभा से सुशोभित

हुई है। इसलिए हिन्दू कहते हैं कि परम सुख अथवा परमानन्द की असली राजधानी आपके अन्तर्गत है। सम्पूर्ण स्वर्ग आपके भीतर है, समस्त आनन्द का मूलस्थान आप में हैं। ऐसी दशा में किसी दूसरी जगह आनन्द ढूँढ़ना कितना अयुक्त है।

सौन्दर्य का रहस्य

भारत में एक प्रेमी के सम्बन्ध में यह कहानी प्रचलित है। वह अपनी प्रेयसी की उत्कण्टा में सूख कर काँटा हो गया था, मांस रह नहीं गया था। निरा ढाँचा पिंजड़ रह गया था। जिस देश में यह युवक रहता था, उसका राजा एक दिन उसे अपने दरबार में लाया, और उसकी प्राणेश्वरी को भी अपने सामने बुलवाया। राजा ने देखा कि नारी बड़ी ही कुरूपा है। राजा ने फिर अपने दरबार को सुसज्जित करने वाली अनेक सुन्दरियों को उस प्रेमी युवक के सामने बुलवाया और उससे कहा कि इनमें से किसी को पसन्द कर लो। युवक ने कहा, "हे महाराज! ऐ सम्राट्! हे नृपति! आप मूर्ख क्यों बनते हैं? राजन्! आप जानते हैं, प्रेम मनुष्य को निरा अन्धा कर देता है। महाराज! आपके नेत्र नहीं हैं कि इसे देख सकें। मेरी आँखों से इस मेरी प्यारी को आप देखिये, तब बताइये कि यह स्वरूपा है या कुरूपा। मेरे नेत्रों से उसे देखिये।" संसार के समस्त सौन्दर्य्य का रहस्य यही है। यही सारा भेद है। संसार के चित्ताकर्षक पदार्थों के सारे जादू का यही भेद है—ऐ मनुष्यो! तुम आप ही अपनी दृष्टि से सब वस्तुओं को मनोहर बनाते हो। प्रेम के नेत्रों से देखते हुए तुम आप ही अपनी प्रभा किसी वस्तु पर डालते हो और फिर उस पर आसक्त हो जाते हो। यूनान के पौराणिक इतिहास में "ईको"* की कथा हमें पढ़ने को

---

*ईको का अर्थ प्रतिध्वनि है। ग्रीक लोगों की दन्त कथा में यह एक

मिलती है। वह अपनी ही प्रतिच्छाया पर मोहित हो गयी थी। सब सुन्दरताओं का यही हाल है, वे केवल आपके अन्तर्गत स्वर्ग अर्थात् आत्मा की ही प्रतिमा हैं। वे केवल आपकी प्रतिच्छाया हैं, और कुछ भी नहीं। जब यह बात है, तो अपनी ही छाया के पीछे दौड़ना व हैरान होना कितनी मूर्खता है।

राम एक ऐसे बच्चे की घटना जानता है, जिसने अभी-अभी रेंगना अथवा घुटनों के बल चलना सीखा था। बच्चे ने अपनी ही छाया देख कर समझा कि यह तो कोई विचित्र वस्तु है, महत्त्वपूर्ण वस्तु है। बच्चे ने छाया का सिर पकड़ना चाहा, वह उसकी ओर रेंगने लगा। छाया भी रेंगने लगी, इधर बच्चा खिसका, उधर छाया भी खिसकी। छांया का सिर पकड़ने में असमर्थ होकर बच्चा रोने लगा। बच्चा गिर पड़ता है, छाया भी उसके साथ गिर पड़ती है। बच्चा फिर उठता है और छाया का पीछा करता है। इतने में माता को उस पर दया आयी और उसने बच्चे के हाथ से उसी का सिर छुआ दिया। अब देखिये, छाया का सिर भी हाथ में आ गया। अपना ही सिर पकड़िये और छाया भी पकड़ में आ जाती है। स्वर्ग और नरक आप ही के भीतर हैं। शक्ति, आनन्द और जीवन का मूल आपके भीतर है। मनुष्यो, प्रकृति और राष्ट्रों का ईश्वर आपके भीतर है। ऐ संसार के मनुष्यो ! सुनो, सुनो, यह पाठ मकानों की छतों से, बड़े-बड़े नगरों के चौराहों से, सब राज-मार्गों से घोषित होने योग्य है। यह पाठ उच्च स्वर से घोषित होने के योग्य है। यदि तुम किसी वस्तु को प्राप्त करना चाहते हो, किसी पदार्थ की अभिलाषा करते हो, तो छाया

देवी मानी जाती है। ज्यूपिटर की स्त्री ज्यूनो के शाप से उसकी वाक् शक्ति दुर्बल पड़ गयी थी, ऐसी मान्यता है, और इस शाप के कारण उस समय से उसको प्रतिध्वनि का रूप प्राप्त हुआ है।

के पीछे न पड़ो। अपना ही सिर छुओ। अपने ही भीतर प्रवेश करो। यह अनुभव होते ही आपको जान पड़ेगा कि संसार आपही का हस्त-कौशल (दस्तकारी) है। आप देखेंगे कि प्रेम की सभी वस्तुयें, समस्त मनोहर और लुभाने वाले पदार्थ आपके ही प्रतिबिम्ब या छाया मात्र हैं। यह कितनी अनुचित बात है कि "एक टोपी या घंटियों जैसी चीजों के लिए हम अपने प्राण दे देते हैं, और जी-तोड़ परिश्रम से हम केवल जलबुदबुद कमाते हैं।"

भारत में एक नारी की मनोरंजक कथा है। घर में उसकी सुई खो गयी। वह गरीबी के कारण अपने घर में दीपक नहीं जला सकती थी, इसलिए वह बाहर निकल गयी और गलियों में सुई ढूँढ़ने लगी। किसी ने पूछा, "गलियों में क्या खोज रही हो?" उसने उत्तर दिया, "अपनी सुई"। भलेमानुस ने पूछा, "सुई कहाँ खोई थी?" नारी ने कहा, "घर में"। उसने कहा, "जो वस्तु घर में खोयी थी, उसकी खोज गलियों में करना कैसी मूर्खता है"। नारी ने कहा, "मैं घर में चिराग नहीं जला सकती और सड़क पर लालटेन है"। वह घर में नहीं ढूँढ़ सकती थी; किन्तु कुछ न कुछ उसे करना ही था, इसलिये गलियों की ही ख़ाक छानने लग पड़ी।

लोगों की ठीक यही दशा है। स्वर्ग, दिव्यलोक, आनन्दधाम सब कुछ आपके भीतर ही हैं, फिर भी गली-कूचों के पदार्थों में आप आनन्द ढूँढ़ते-फिरते हैं, उस वस्तु की खोज बाहर-बाहर, इन्द्रियों के बिषयों में करते रहते हैं। यह कैसा आश्चर्य है!

एक और दूसरी अति मनोहर कथा एक पागल मनुष्य की भारत में प्रचलित है। वह गरीब लड़कों के पास आया और बोला कि नगर-नायक (Mayor) एक बड़ा भोज देने की तैयारी कर रहा है, और सब लड़कों को आमन्त्रित किया है। आप जानते हैं कि

लड़के मिसरी और मिठाई पसन्द करते हैं। इस पागल आदमी द्वारा नगर-नायक के भोज के सम्बन्ध में निश्चय पाने पर लड़के नायक के घर दौड़ गये; किन्तु वहाँ भोज कहाँ, कुछ भी नहीं था। लड़के चरका खा गये, कुछ देर के लिए उनका चेहरा उतर गया, और हँसी होने लगी। लड़कों ने पागल से पूछा, "कहिये महाशय! आप तो जानते ही थे कि यह बात मिथ्या है, फिर आप आये क्यों?" उसने कहा, "कदाचित् भोज सचमुच न हो, बात सच निकले और मैं रह जाऊँ।" वह चूकना नहीं चाहता था, इसी कारण से उसने बालकों का अनुसरण किया।

ठीक यही दशा उन लोगों की है, कि जो अपनी ही कल्पना से, अपने ही आशीर्वाद से फूलों को सुन्दरता प्रदान करते हैं, इस संसार की प्रत्येक वस्तु को चित्ताकर्षक बनाते हैं, अपनी ही कल्पना से पागल मनुष्य की भाँति, प्रत्येक को वांछनीय करते हैं, और फिर उसके पीछे इसलिये दौड़ते हैं कि कहीं वे उससे वंचित न रह जायँ।

उपसंहार। अपने भीतर स्वर्ग का अनुभव करो, तब एक साथ ही सब आकांक्षायें पूर्ण हो जायँगी, सब कष्टों और दुःखों का अन्त हो जायगा।

"Lo! the trees of the wood are my next of kin.
And the rocks alive with what beats in me.
The clay is my flesh, and the fox my skin,
I am fierce with the gadfly and sweet with the bee.
The flower is naught but the bloom of my love,
And the waters run down in the tune I dream.
The sun is my flower uphung above,
I cannot die, though for ever death,
Weave back and fro in the warp of me.

I was never born, yet my births of breath
Are as many as waves on the sleepless sea."

"देखो ! वन के वृक्ष मेरे कुटुम्बी हैं ।
और मुझ में जो धड़क रहा है उसी से पहाड़ सजीव हैं ।
मिट्टी मेरा मांस है, और लोमड़ी मेरा चर्म ।
मैं डाँस (Gadfly) में क्रूर और मधु मक्खी में मधुर हूँ ।
फूल मेरे प्रेम के विकास के सिवाय और कुछ नहीं ।
और नदियाँ मेरे स्वप्न के स्वर में बह रही हैं ।
आकाश में लटका हुआ सूर्य मेरा पुष्प है ।
मैं मर नहीं सकता, मृत्यु चाहे सदा मेरे ताने-बाने में ऊपर नीचे भटकती रहे ।

मैं अजन्मा हूँ, तथापि मेरे श्वाँस के जन्म उतने ही हैं, जितनी निद्रा-रहित समुद्र पर लहरें ।"

ओह ! स्वर्ग तुम्हारे भीतर है, इन्द्रियों के विषयों में आनन्द की खोज मत करो, अनुभव करो कि आनन्द स्वयं मुझ में है ।

ओ३म् ! ओ३म् !! ओ३म् !!!

आत्म-विकास

[अमेरिका की विज्ञान-सभा के भवन में स्वामी राम का व्याख्यान]

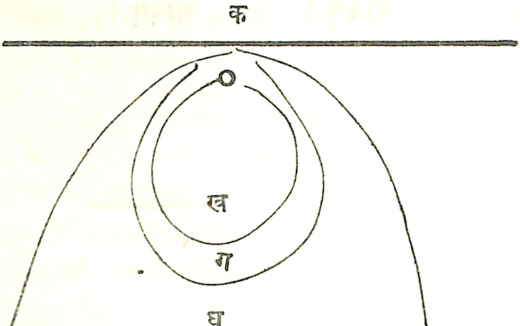
महिलाओं और सज्जनों के रूप में मेरे ही आत्मन् !

आज रात्रि को आत्म-विकास के विषय में हम लोग कुछ सुनने वाले हैं; दूसरे शब्दों में, जीवन-कोटि पर, अथवा आध्यात्मिक उन्नति के क्रम पर, अथवा यों कहिये स्वार्थ-परता की विशुद्धता के दर्जों पर हम कुछ सुनने वाले हैं। कदाचित् जिस सिद्धांत पर हम पहुँचेंगे, वह चकित कर देगा।

विषय

अपने सामने आप जो चित्र देख रहे हैं, वह एक सीधी रेखा और वृत्तों का बना हुआ है। आप पूछेंगे कि इनका क्या उपयोग है? चक्रों का आत्मा के विकास से क्या सम्बन्ध है? कुछ लोग अपने चित्त में कह रहे होंगे—ये वृत्त नहीं हैं, ये बड़े ही वक्र हैं, ये तो अण्डाकार वृत्त हैं; किन्तु इन वृत्तों से जीवन की उन कोटियों को प्रकट करना है जो कि ठीक गोल नहीं हैं; जो टेढ़ी और अण्डाकार कही जा सकती हैं, और इससे वृत्तों की अपूर्णता का समर्थन होता है। वे अपनी अपूर्णता और पथ-विमुखता से ठीक उसी को दरशा रहे हैं, जिसे उन्हें प्रकट करना है।

वृत्त



जीवन और उसकी कोटियां क्या हैं, इस सम्बन्ध में कुछ कहने के पूर्व हमें इन वृत्तों के सम्बन्ध में कुछ शब्द कहने पड़ेंगे।

यह सबसे छोटा वृत्त है, बहुत ही छोटा बिन्दु है। यह इससे और भी छोटा बनाया जाना चाहिए था, किन्तु इस आशंका से नहीं बनाया गया कि उस अवस्था में दिखायी न पड़ेगा, इसलिये इतना बड़ा बनाया गया है कि दिखायी पड़े। इसके बाहर एक दूसरा वृत्त है, जो छोटे शिशु वृत्त से बड़ा है, और उसके बाहर तीसरा है और उसके भी बाहर चौथा है। इनमें एक विशेषता यह है कि वृत्त जितना-जितना फैलता और बढ़ता जाता है, वृत्त का केन्द्र उतना ही उस सीधी रेखा पर के प्रारम्भिक बिन्दु (क) से हटता जाता है जो कि सब वृत्तों की सामान्य स्पर्श-रेखा है। केन्द्र पीछे हटता जाता है, व्यासार्द्ध (radius) और वृत्त बढ़ता जाता है। यदि वृत्त का केन्द्र प्रारम्भिक बिन्दु (क) के बहुत नगीच हो, और नगीच करते-करते उसे यहाँ तक सन्निकट कर दिया जाय कि वह प्रारम्भिक बिन्दु (क) के साथ एक हो जाय, तो वृत्त भी एक बिन्दु बन जाता है। इस प्रकार बिन्दु एक ऐसे वृत्त की एक अत्यन्त संकुचित दशा है, जिसका केन्द्र प्रारम्भिक बिन्दु के बहुत ही निकट आ गया है। और जब केन्द्र प्रारम्भिक स्थान से दूर हटता जाता है, तब व्यासार्द्ध (radius) बढ़ता-बढ़ता अनन्त हो जाता है; अथवा जब केन्द्र अनन्तता तक सरक जाता है, तब वृत्त सीधी रेखा हो जाता है। इस प्रकार सीधी रेखा उस वृत्त की अन्तिम अवस्था है, जिसका केन्द्र अनन्तता तक हट जाता है अथवा जिसका व्यासार्द्ध अनन्त है।

दूसरी विशेषता हम यह देखते हैं कि वृत्त जितना ही बड़ा होता जाता है, उतना ही वह सीधी स्पर्श-रेखा के सन्निकट होता जाता है, और वृत्त ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों उसका बाँकपन घटता

जाता है। इस प्रकार हमारे ध्यान में यह आता है कि बड़ा वृत्त, जिसका केन्द्र (घ) है, (ग) केन्द्र वाले भीतरी वृत्त की अपेक्षा (क) बिन्दु पर सीधी रेखा के कहीं अधिक तुल्य है। और फिर यह भीतरी वृत्त (ग) केन्द्र वाला अपने भीतरी वृत्त (ख) केन्द्र वाले की अपेक्षा उसी (क) बिन्दु पर सीधी रेखा के कहीं अधिक समान है। इसी कारण से पृथ्वी वास्तव में गोल होने पर भी जब आप उसके किसी भाग पर दृष्टि डालते हैं, तो चिपटी दिखायी पड़ती है। क्योंकि पृथ्वी-खण्ड के वृत्त यन्त्र-रहित नेत्रों के लिए अनन्त बड़े हैं। वृत्तों के सम्बन्ध में इतना ही बहुत है।

जीवन! जीवन का मुख्य लक्षण क्या है? प्राणहीनता अथवा निर्जीवता से जीवन का भेद किस बात से किया जा सकता है?

जीवन गति, उद्योगशक्ति, अथवा कर्मण्यता से। प्रश्न का साधारण उत्तर यही है। जीवन की वैज्ञानिक परिभाषायें भी इसी परिभाषा में समा सकती हैं। जीवित मनुष्य हिल-डुल सकता है, चलता-फिरता है और सब तरह के काम कर सकता है। रक्षित मृतक शरीर (mummy) शक्ति के ये रूप, अथवा यह गति, अथवा जीवित मनुष्य की उक्त हरकतें नहीं प्रकट कर सकता। मृतक प्राणी इधर-उधर नहीं जा सकता; जीवित प्राणी चलता, दौड़ता, सब प्रकार के काम करता है। सूखा पौधा बढ़ नहीं सकता, वह गति से शून्य है और कर्मण्यता से बिल्कुल रहित है। जानदार पौधा बढ़ता है और हरकत प्रकट करता है।

फिर हम देखते हैं कि जीवन के प्रायः चार भेद किये जाते हैं, अथवा यह जगत चार मुख्य वर्गों या कोटियों में विभक्त है:—

जीवन की चार कोटियाँ और उनकी तुलना । खनिज, उद्भिज, पशु और मनुष्य । इस विभाग में हम यह देखते हैं कि मनुष्य पशुओं की अपेक्षा अधिक उद्योगशक्ति, अधिक गति और उच्च कोटि का व्यापार प्रकट करते हैं । पशु केवल चल-फिर सकते हैं, दौड़ सकते हैं या पहाड़ों पर चढ़ सकते हैं; किन्तु मनुष्य इन सब कामों के अतिरिक्त और भी बहुत कुछ करता है । वह और भी अनेक बातें करता है । वह उच्चतर कोटि की उद्योगशक्ति अथवा गति प्रकट करता है । दूरबीनों के द्वारा वह नक्षत्रों तक पहुँच सकता है । पशु ऐसा नहीं कर सकते । मनुष्य पशुओं पर शासन कर सकता है । वह वाष्प और विद्युत् के द्वारा देश और काल का उच्छेद करता है । उसे इतनी शक्ति प्राप्त है जिसका कि पशुओं में पता तक नहीं । वह संसार के किसी भी भाग में तुरन्त सन्देश भेज सकता है । वह हवा में उड़ सकता है । संसार में यह है मनुष्य की गति, मनुष्य का उद्योग और शक्ति का प्रादुर्भाव । शक्ति को स्पष्ट या प्रकट करने में पशु मनुष्य से कहीं कम हैं, इस प्रकार हम देखते हैं कि जीवन की श्रेणी में मनुष्य की अपेक्षा पशु बहुत नीचे हैं ।

अब उद्भिज-कोटि की तुलना पशु-कोटि से कीजिये । वृक्ष शाक-पात भी बढ़ते हैं, उनमें गति है, किंतु एकमुखी । वे केवल एक स्थान में बढ़ सकते हैं, एक स्थान से दूसरे स्थान को नहीं जा सकते, वे एक स्थल पर जमे हुए हैं । सब दिशाओं में उनकी शाखायें जाती हैं और जड़ें बहुत गहराई तक प्रवेश करती हैं; किंतु पशु-कोटि में क्रिया का जितना आविर्भाव या प्रकाश होता है, उसकी अपेक्षा वनस्पति में बहुत कम है । और इस प्रकार हम देखते हैं कि जीवन की कोटि में वनस्पतियाँ पशुओं की अपेक्षा बहुत नीचे हैं । खनिज पदार्थों में कोई जीवन नहीं है । यदि हम जीवन की वही व्याख्या करें, जो जीवविद्या-विशारद (Biologist)

करते हैं, तो उनमें कोई जीवन नहीं है। परन्तु यदि क्रियाशक्ति के आविर्भाव और प्रकाश की दृष्टि से हम जीवन की कोटियों पर ध्यान दें, तो हम कह सकते हैं कि खनिज पदार्थ भी एक प्रकार की गति प्रकट करते हैं। उनमें भी परिवर्तन होता है, उनके लिये भी परिवर्तन अनिवार्य्य है।

इस प्रकार उनमें भी जीवन के अति न्यून लक्षण हैं। परन्तु जीवन की अधम श्रेणी में होने से उनका जीवन बहुत ही तुच्छ है, क्योंकि उनके द्वारा प्रकट होने वाली कर्म-शीलता, गति, उद्योगशक्ति तुच्छ और अति सूक्ष्म है। इससे स्पष्ट है कि जीवन जिस का लक्षण गति है, उसकी श्रेणियाँ अपनी गति या उद्योग-शक्ति के दर्जों के अनुसार हैं।

प्रकृति की युक्ति।

प्रकृति की युक्ति (Plan) यह है कि संसार में कुछ भी नवीन नहीं होना चाहिए। हम देखते हैं, कि इस वाह्य अनेकता और वाह्य बहुरूपता के होते हुए भी प्रकृति या विश्व बहुत कृपण है। प्रेमी के लोचनों से एक आँसू का टपकना जिस कानून के अधीन है, वही कानून सूर्य्यों और तारों के भ्रमण का भी शासनकर्ता है। छोटे से छोटे अणु से लगा कर अत्यन्त दूरस्थ नक्षत्र तक को उन्हीं साधारण कानूनों द्वारा हम नियन्त्रित और शासित होते देखते हैं, कि जो पोरों पर गिने जा सकते हैं। प्रकृति पुनः पुनः अपने को दोहराती है। इस विश्व की तुलना (Screw) या चक्राकार पदार्थ (Spiral) से की जा सकती है, जिसका प्रत्येक दन्दाना या चक्र एक ही ढंग का है, अथवा प्याज से इसकी तुलना कर सकते हैं। एक पर्त उतार डालिये, वैसी ही दूसरी पर्त मौजूद है, अब इसको भी उतार डालिये फिर वैसी ही और हमारे सामने है। इसको भी छील डालिये और

ठीक ऐसी ही एक और पर्त आप देखेंगे । ठीक इसी प्रकार साल भर में जो कुछ होता है, वही छोटे परिणाम पर हर दिन में घटित होता रहता है। प्रात:काल का मिलन बसन्त ऋतु से किया जा सकता है। दोपहर की तुलना ग्रीष्म से हो सकती है। तीसरे पहर और सायंकाल की तुलना शरद् से हो सकती है, और रात्रि की जाड़े से। इस प्रकार चौबीस घंटों में छोटे परिणाम में सम्पूर्ण वर्ष का दौरान हो जाता है। गर्भ में मनुष्य आश्चर्यजनक शीघ्रता से मानवस्वरूप धारण करने से पहले की सब योनियों के, जिनमें उसने वास किया है, अनुभवों को दोहरा डालता है। मानव-शिशु के रूप में आने के पूर्व पिंड (foetus) गर्भाशय में क्रम से मछली, कुत्ता, बन्दर इत्यादि के रूपों को धारण करता है। इस प्रकार विकासवाद के साधारण नियम के अनुसार अथवा सारे संसार का शासन करनेवाले साधारण कानून के अनुसार हम पता लगाना चाहते हैं कि शरीर अथवा मनुष्य की आकृति में क्या खनिज, उद्भिज और पशु-कोटियों की भी व्यवहार रूप से पुनरुत्पत्ति है।

क्या मनुष्य के रूप में ऐसे लोग नहीं हैं, जो मानो खनिज ही हैं? मनुष्य के रूप में क्या ऐसी व्यक्तियाँ नहीं हैं जो उद्भिज कोटि की अवस्था में हैं? और क्या ऐसे लोग भी मनुष्य रूप में नहीं हैं जो पशु कोटि की दशा में हैं? हम उन मनुष्यों को भी देखना चाहते हैं, जो वास्तव में मनुष्य हैं, और जो मानव रूप में देवता हैं।

पहले हम नैतिक (moral) और आध्यात्मिक (spiritual) खनिजों को लेते हैं। देखने में खनिज-कोटि किसी प्रकार

की गति प्रकट नहीं करती, बाहर से किसी प्रकार की उद्योगशक्ति नहीं दिखाती; किन्तु तथापि उसमें किसी प्रकार की उद्योगशक्ति, कर्मण्यता और गति जरूर है, क्योंकि हम खनिजों को बदलते देखते हैं, खनिजों में भी बढ़ने और बिखरने की क्रिया पायी जाती है। वे घन (crystallized) होते और बढ़ते हैं। समुद्र के मुकाबले में हमें अचल दिखाई पड़नेवाली यह पृथ्वी, अथवा सुदृढ़ प्रतीत होनेवाली यह पृथ्वी उभरती, दबती, बदलती और लहरों की तरह नीची-ऊँची होती रहती है। इस प्रकार खनिजों में एक प्रकार की गति है, यद्यपि बहुत करके अस्पष्ट है।

खनिज मनुष्य।

अब, मनुष्य के रूप में वे कौन हैं जिनमें खनिजों की सी ही गति है; दूसरे शब्दों में, जिनमें उसी प्रकार की गति है जैसी बच्चों की फिरकी या लट्टू में। फिरकी या लट्टू घूमता है, बार-बार चक्कर काटता है, वह डोलता है, और जिस समय वह बड़े वेग से घूमता रहता है, लड़के आकर जोर से तालियाँ बजा-बजा कर प्रसन्नता से कहते हैं, यह अचल है, यह डोलता नहीं है। यह आत्म-केन्द्रित गति (Self-centred motion) है, यह चकराती हुई गति है, किन्तु चक्कर का केन्द्र शरीर के भीतर होता है, यद्यपि गति की अत्यन्त उग्रता के समय देखने में कोई गति प्रतीत नहीं होती।

आप जानते हैं कि, इस संसार में सब गतियाँ वृत्ताकार हैं, सीधी रेखा में कोई गति नहीं होती। सम्पूर्ण विज्ञान-शास्त्र इसे सिद्ध करता है। इस कारण गति के आविर्भाव को करने के लिये हम वृत्तों का उपयोग करेंगे। गणित-विद्या में गति का निरूपण रेखायें करती हैं। इस मामले में वृत्ताकार रेखाओं से खूब काम निकलेगा।

इस प्रकार खनिज कोटि में जो गति हम पाते हैं, वह फिरकी की गति के तुल्य है। आपके सामने जो चक्रों का आकार है, उसमें जो सबसे छोटा वृत्त है और जो बिंदु कहा जा सकता है, वह इस गति को भली भाँति प्रकट कर सकता है। मनुष्यों में वे कौन हैं, जिनकी गति लट्टू की गति के तुल्य है, जिनका चक्कर या गति का मार्ग एक बिंदु-मात्र है, जिनका जीवन खनिज पदार्थों का सा जीवन है? जरा विचार कीजिये। स्पष्टत: ये वही मनुष्य हैं, जिनके सब काम-काज एक छोटे से बिन्दु वा अनात्मा अर्थात् साढ़े तीन हाथ लम्बे शरीर के छोटे से वृत्त में एकत्रित हैं। वे अधम कोटि के स्वार्थी हैं। ये वे लोग हैं, जिनके सर्व कार्य इन्द्रिय-तृप्ति के लिये हुआ करते हैं। ये लोग विभिन्न प्रकार के कार्य करते हैं, सब तरह के परिश्रम करते हैं; किंतु इनका उद्देश्य केवल अधोगति करने वाले सुखों की तलाश है। इन्हें स्त्री और बच्चों के भूखों मरने की परवाह नहीं होती, पड़ोसी मरें या जियें इन्हें क्या, कुछ भी हो वे मद्यपान करेंगे हो, मौज उड़ावेंगे ही, और हीन प्रकृति की आज्ञाओं का पालन अवश्य करेंगे। उनकी आचार भ्रष्ट करनेवाली आवश्यकतायें पूरी होनी ही चाहिए, चाहे उनके कुटुम्ब और समाज के हितों की हानि ही हो। चाहे उनके स्त्री और बच्चे भूखों मरें उन्हें कुछ परवाह नहीं, अगर उनकी विषय-वासना की तृप्ति होती रहे। उनकी सब चेष्टाओं का केन्द्र, या जिस नाभी (focus) के इर्द गिर्द वे घूमते हैं, अथवा जिस सूर्य का वे चक्कर काटते हैं वह, या उनके पथ (orbit) का केन्द्र एकमात्र तुच्छ शरीर है। उनकी कर्मशीलता या गति निर्जीव गति है। मनुष्य में यही खनिज-जीवन है। संसार के इतिहास में मनुष्य के रूप में अति सुहावने और मूल्यवान खनिज हुये हैं। आप जानते है हीरे भी खनिज-जगत

की वस्तु हैं। लाल, मोती, रत्न और सब तरह के कीमती पत्थर भी इसी कोटि के पदार्थ हैं।

रोम (Rome) के इतिहास में एक वह समय था, जब नीरो (Nero), टाइबेरियस (Tiberius) तथा अन्य सीजर (Caesars) नाम के राजा थे, जिनके नाम लेना भी आप के कान अपवित्र करना है। बड़े-बड़े शक्तिशाली शासक और सम्राट् हो गये हैं, किन्तु वे अति मूल्यवान खनिजों के सिवाय और कुछ भी नहीं थे; मनुष्य नहीं थे। इन सम्राटों को आप क्या समझेंगे, जो अपने ज्ञात संसार के राजा तो थे, परन्तु अपने राज्य के हित की तिनका भर भी परवाह नहीं करते थे। जो अपने मित्रों और सम्बन्धियों का कुछ भी विचार नहीं रखते थे। और जो अपनी पाशविक वासनाओं की तृप्ति में ही लगे रहते थे, चाहे उनकी रानियों, प्रजा तथा मित्रों के साथ कुछ ही हो रहा हो। आप उनके विषय और उनके किये हुए पातकों के विषय में भली भाँति जानते हैं। इनमें से एक को समस्त दिन सुस्वादु व्यंजन खाते रहने का दुर्व्यसन हो गया था। जब कोई अत्यन्त सुस्वादु पदार्थ उसके सामने आ जाता था, तो उस समय तक वह अपना मुँह नहीं फेरता था, जब तक कि पेट बिल्कुल जवाब नहीं दे देता था। तदुपरान्त औषधियों की सहायता से सब कुछ उगला दिया जाता था। पेट खाली होने पर फिर वह खाने में लग्गा लगा देता था। दिन भर में इस क्रम को वह बारम्बार करता था। अग्नि-काण्ड देखने की आकांक्षा पूरी करने के लिए इसने संसार की राजधानी जला दी थी। इसको आप क्या समझते हैं? निस्सन्देह ये मूल्यवान हीरे थे, रत्न थे, किन्तु मनुष्य नहीं थे। ये हैं मानव-जगत् में खनिज।

अब हम मनुष्य रूप में वनस्पतियों की अवस्था पर आते हैं। खनिज मनुष्य के अत्यन्त स्वार्थपूर्ण छोटे वृत्त से उनका वृत्त बड़ा है।

उद्भिज मनुष्य। इनका वृत्त बड़ा है और ये लोग खनिज-मनुष्य से बहुत ऊँचे हैं। इनकी कर्म-शीलता की तुलना घुड़दौड़ के घोड़े की गति से की जा सकती है। घुड़दौड़ के घोड़े का वृत्त फिरकी या लट्टू के वृत्त से बड़ा है। चक्र में उसका वृत्त दूसरे दायरे से, जिसका केन्द्र (ख) है, दर्शाया गया है। ये लोग कौन हैं ? अन्य मनुष्य के स्वार्थ को भेंट चढ़ाकर ये लोग केवल अपनी इन्द्रियासक्ति को संतुष्ट करने के लिये अपने काम में नहीं लगते। वे कुछ और साथियों के हित का भी ध्यान रखते हैं। ये वे लोग हैं, जो अपनी स्त्री और बच्चों के पारिवारिक वृत्त के इर्द-गिर्द घूमते हैं। स्वार्थी खनिज-मनुष्यों से ये कहीं हैं, क्योंकि ये केवल अपने ही शरीर का हित नहीं साधते, किंतु अपनी स्त्री और बच्चों के पक्ष का भी ध्यान रखते हैं। इस दूसरे वृत्त में जिस प्रकार अनेक छोटे वृत्त समा जाते हैं, उसी प्रकार ये लोग भी अपने तुच्छ व्यक्ति के अतिरिक्त अनेक व्यक्तियों की भलाई करते हैं। किंतु क्या इन्हें निःस्वार्थी कहना चाहिए ? कदापि नहीं। इन लोगों के विषय में आत्मा का केवल कुछ विकास हो गया है। खनिज-मनुष्य के विषय में आत्मा इस तुच्छ शरीर तक ही परिमित था। और इन लोगों के विषय में, पारिवारिक वृत्त अर्थात् उनके स्त्री और बच्चों से आत्मा की ठीक एकता हो गई है। यह भी स्वार्थपरता है, किन्तु कुछ शुद्धताई लिये हुए है। ये लोग अपनी पहुँचभर बड़े भले आदमी हैं। किन्तु उस दूसरे वृत्त की ओर देखिये, जो इनकी हालत को दर्शाता है। यह अपने भीतर की सब वस्तुओं की ओर झुका हुआ है। यह झुकाव (Concavity) क्या चीज है ? प्रेम-भुजाओं में लिपटाना अथवा आलिंगन करना झुकाव है। अपनी भुजाओं को फैलाकर एक वृत्त बनाइये। यही झुकाव (Concavity) है। यह वृत्त कुटुम्बियों के लिये झुका हुआ है, उन सब बिन्दुओं की ओर मुख

किये हुए है। जिनका यह आलिंगन करता है, किन्तु अपने से बाहर के सारे संसार की ओर पीठ फेरे हुए है।

ये लोग अपनी शक्ति के अनुसार जहाँ तक इनका झुकाव या फैली हुई भुजाओं की पहुँच है, बहुत अच्छे हैं। किन्तु सारे संसार की ओर ये अपनी पीठ फेरे हैं। वनस्पति-मनुष्य के इस दूसरे वृत्त में विचरने वाले मनुष्यों की स्वार्थपरता उस समय खुल जाती है, जब एक कुटुम्ब के स्वार्थ दूसरे कुटुम्ब के स्वार्थों के विपरीत होते हैं, और तब एक कुटुम्ब के सब मनुष्यों से दूसरे कुटुम्ब के सब मनुष्यों का खूब विवाद और फिसाद होता है।

अब हम तीसरे वृत्त पर आते हैं। ये पशु-मनुष्य हैं अर्थात् मनुष्यों के रूपों में पशु। यह तीसरा वृत्त जो चक्राकार में (ग) **पशु-मनुष्य।** केन्द्र करके दिखाया गया है, पहले दोनों वृत्तों से बड़ा है। इसकी तुलना मौसमी हवाओं या (monsoons) या व्यापारी हवाओं (Trade winds) के वृत्त से की जा सकती है। यह उन लोगों की दशा दर्शाता है, जिन्होंने अपनी अभेदता ऐसी वस्तु से कर ली है कि जो इस तुच्छ शरीर अथवा कौटुम्बिक वृत्त से ऊँची या विशाल है। ये लोग अपने वर्ग या सम्प्रदाय अथवा राज्य से अपनी अभेदता कर लेते हैं। ये लोग साम्प्रदायिक हैं, और अपनी किसी जाति या बिरादरी से अभेदता कर लेते हैं। ये बड़े अच्छे हैं, सचमुच बड़े उपयोगी हैं, वनस्पति-मनुष्यों से कहीं अधिक काम के हैं। इनका केन्द्र इस परिच्छिन्न शरीर से परे है। वनस्पति-मनुष्य के केन्द्र की अपेक्षा यह बहुत ऊँचाई पर और विस्तार लिये हुए है। इनके चक्कर के व्यासार्द्ध (radius) की लम्बाई ज्यादा है। ये लोग धन्य हैं। आप जानते हैं कि इनकी उपयोगिता अनेक कुटुम्बों और व्यक्तियों तक फैलती है। इनकी भुजायें

जिन लोगों का प्रेमालिंगन करती हैं, उनके लिये ये मनुष्य उपयोगी हैं। जिन लोगों के प्रति इनका झुकाव है, उनके लिये ये लाभदायक हैं। ये लोग केवल अपने नन्हें से शरीर अथवा एक परिवार या घर का ही हित नहीं साधते, किंतु उस समस्त वर्ग या सम्प्रदाय का हित भी साधते हैं, जिनसे इन्होंने अपनी अभेदता कर ली है। ये बड़े ही उपयोगी हैं। क्या ये भी स्वार्थी हैं? क्यों नहीं, अवश्य हैं। ये भी स्वार्थपरायण हैं। ये अन्य सम्प्रदायों या जातियों की हानि करके अपने से अभिन्न जाति या सम्प्रदाय की भलाई का प्रयत्न करते हैं। यदि आप इन लोगों की त्रुटियाँ जानना चाहते हैं, तो आपको केवल इनके वृत्त से बाहर के सब बिन्दुओं के प्रति इनके भाव पर दृष्टि डालनी होगी। इनके वृत्त से बाहर जो कुछ है, उसकी ओर ये पीठ फेर देते हैं। जब इनकी साम्प्रदायिकता घनीभूत (दृढ़) और अचल हो जाती है, तो भिन्न मतावलम्बियों को धिक्कारते हैं, अर्थात् बुरा-भला कहने से नहीं चूकते। यहाँ एक जाति है, और वहाँ दूसरी जाति है। अर्थात् इसी प्रकार का दूसरा वृत्त है। इन दोनों के एक दूसरे के प्रतिकूल हो जाने पर एक जाति के सब व्यक्तियों से दूसरी जाति के सब व्यक्तियों का लड़ना-मरना शुरू हो जाता है। समझ रखिये, यदि वे कुछ की भलाई करते हैं, तो दूसरी जातियों या समाजों और विरोधी सम्प्रदायों से युद्ध छेड़ कर यदि अधिक नहीं तो उतनी ही हानि अवश्य करते हैं। एक समग्र सम्प्रदाय का दूसरी ओर के सम्पूर्ण सम्प्रदाय से लड़ना-झगड़ना बना रहता है। इससे कितना असन्तोष उत्पन्न होता है। फिर भी ये लोग वनस्पति-कोटि के लोगों से कहीं अधिक वांछनीय हैं।

प्रकृति का नियम है कि तुम्हें एक स्थिति में स्थिर नहीं रहना

चाहिए, बल्कि बढ़े चलना चाहिए, और आगे-आगे बढ़ते ही जाना चाहिए। परिवर्तन और उन्नति के विपरीत जड़ता के अधीन मत हो। जब लोग खनिज-मनुष्य की अवस्था में हैं, तो दूसरी उच्चतर अवस्था वनस्पति-मनुष्य की होगी। और इसके बाद की उच्चतर अवस्था पशु-मानव की होगी। यदि ऊपर की ओर चढ़ता और आगे बढ़ता हुआ मनुष्य पशु-मानव की अवस्था से होकर निकलता है, तो यह अच्छा ही है। मनुष्य के लिये पशु-कोटि की अवस्था में होकर गुजरने में कोई भी हानि या क्षति नहीं है, यह सर्वथा ठीक है। उसी समय सब बातें बिगड़ती हैं, हरएक चीज अस्त-व्यस्त हो जाती है और हानि पैदा करती है, जब किसी मत या सम्प्रदाय के हाथ अपनी स्वाधीनता बेच कर, हम एक स्थान पर रुक कर, अचल हो जाने की इच्छा करते, तथा और आगे बढ़ना अस्वीकार करते हैं। एक न एक समय उस अवस्था में होकर गुजरना सबके लिये स्वाभाविक है। किन्तु उसमें चिपके रहना और उसे चिरस्थायी बनाने की चेष्टा करना मनुष्य के लिए अनुचित है। उसका किसी नाम विशेष का दास बन जाना, अथवा अपनी स्थिति को स्थिरता प्रदान करना ही अनुचित और हानि का कारण है। जब सोडोम (Sodom) और गोमोरा (Gomora) नगर नष्ट किये जा रहे थे, लूत (Lot) की स्त्री लौट पड़ी थी। वह नगर छोड़ रही थी, परंतु उसने पीछे मुँह मोड़ लिया। वह नगर में रहना चाहती थी, उसका चित्त वहाँ लगा हुआ था और उसने फिर लौटना चाहा। फल यह हुआ कि वह जहाँ की तहाँ लवण का स्तम्भ हो गई। ठीक यही दशा उन लोगों की है जो ऊपर की ओर उन्नति कर रहे हैं, और जो अपनी पहली अवस्था से आगे चल रहे हैं, तथा जो आगे बढ़ना अस्वीकार नहीं करते हैं। उनके लिए यह अच्छा है; किन्तु ज्यों ही वे पीछे लौटना चाहते हैं, एवं आगे बढ़ना अस्वीकार करते

हैं, अपने आपको नामों तथा रूपों के हाथ बेच डालते हैं, उसी क्षण वे अपने को लवण के स्तम्भ में बदल लेते हैं। ऐसी स्थिरता या धर्मान्धता क्लेश का कारण होती है। ये पशु-मनुष्य अच्छे मनुष्य भले ही हों, परन्तु उन्नति करना आवश्यक है, आगे बढ़ चलना चाहिए।

देश भक्त मनुष्य।

अब हम चौथे वृत्त पर आते हैं जो चित्र में (घ) केन्द्र से दर्शाया गया है। यह मनुष्य रूप में मनुष्य हैं। यह साधारण मनुष्य है। इसके वृत्त की तुलना चन्द्र के वृत्त से की जा सकती है। चन्द्रमा पृथ्वी के गिर्द एक वृत्त बनाता है। इसकी आकृति वृत्ताकार की अपेक्षा अण्डाकार अधिक है। यह चन्द्र-मनुष्य कौन है? इसका मार्ग बहुत बड़ा है। यह कदाचित् सुखी है। यह वह मनुष्य है जो सम्पूर्ण राष्ट्र या जाति से अपनी अभेदता कर लेता है। आप उसे देशभक्त कह सकते हैं। उसका वृत्त बहुत ही बड़ा है। जिनकी सेवा में वह लगता है, वे किस सम्प्रदाय वाले हैं, इसकी उसे परवाह नहीं होती। जात-पाँत, वर्ण, नाम और संज्ञा का ध्यान छोड़कर वह अपने देश के समस्त निवासियों का पक्ष पुष्ट करना ही अपना कर्त्तव्य समझता है। वह अति धन्य है, अथवा हार्दिक स्वागत के योग्य है, वह बड़ा ही भला है। वह मनुष्य तो है, किन्तु इससे अधिक नहीं। आप जानते हैं कि चन्द्रमा समुद्र में क्षोभ उत्पन्न करता है, अर्थात् ज्वार और भाटा पैदा करता है। इसके अतिरिक्त आप जानते हैं कि पागल भी चन्द्रमा से प्रभावित (Moonstricken) कहे जाते हैं। निस्सन्देह, चन्द्र-वृत्त एक अच्छा वृत्त है। परन्तु विचार कीजिये, जब चन्द्र-मनुष्य अपनी स्थिति अचल बना लेते हैं, जब ये लोग ऐसे स्वार्थपरायण हो जाते हैं कि इनकी स्वार्थपरता में परिच्छिन्नता आ जाती है (इनकी स्वार्थपरता

का अर्थ है देशभक्ति), जब यह भक्ति कठोर बना दी जाती है, जब इसमें परिच्छिन्नता आ जाती है, तब इसका क्या फल होता है ? यह राज्य-परिवर्तन और पागलपन पैदा करती है। यह एक राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र का विरोधी बनाती है, और तब संग्राम तथा ख़ूनख़राबी होती है। हजारों और कभी-कभी लाखों प्राणी रक्त बहाते, गिराते और पान करते हुए इस सुन्दर पृथिवी का सुमुख नरभेद से लज्जित तथा रक्त से लाल कर देते हैं। जिन्हें वे प्रेमालिंगन करते हैं, जिनके प्रति वे झुके हुए हैं, उनके लिये तो वे बहुत अच्छे हैं। किन्तु जिनसे पीठ मोड़े हुए, या प्रतिकूल हैं, उनके प्रति उनके भावों पर ध्यान दीजिये। वाशिंगटन (Washington) अमरीका वालों के लिए तो बहुत अच्छा है, किन्तु उसके विषय में ज़रा अंग्रेज़ों के मन से तो पूछिये। अंग्रेज़-देशभक्त जहाँ तक उस देश का सम्बन्ध है, जिसे वे अपना कहते हैं, बहुत अच्छे हैं; किन्तु जिन जातियों का जीवन-रक्त उनकी देशभक्ति चूस रही है; उनकी दृष्टि से उनका विचार कीजिये।

सब के अन्त में हम पाँचवें वृत्त पर आते हैं। इसका केन्द्र अनन्तता तक पहुँचता है, अथवा यों कहिये कि व्यासार्द्ध अनन्त हो

देव मनुष्य। जाता है। तब वृत्त का क्या होता है ? जब व्यासार्द्ध अनन्तता की खबर लेता है, तब वृत्त सीधी रेखा हो ही जायगा। सब बाँकापन जाता रहेगा। सीधी रेखा सर्वत्र ही समता और बिना पक्षपात के गुज़रती है। न तो यह किसी की ओर झुकी हुई है और न किसी से पीठ फेरे हुए है, अर्थात् न तो किसी के लिए अनुकूल है, न प्रतिकूल। वृत्त सम रेखा अर्थात् सीधी रेखा हो जाता है। सारा टेढ़ापन मिट जाता है। सारी वक्रता दूर हो जाती है। ये देव-मनुष्य हैं, अर्थात् मनुष्य के रूप में देवता या ईश्वर हैं। इनके वृत्त की तुलना सूर्यकृत वृत्त से की जा सकती है। आप जानते हैं कि सूर्य

की गति सीधी रेखा में होती है। उसके वृत्त का व्यासार्द्ध असीम है। सूर्य प्रभा का पुंज है। यह एक ऐसा वृत्त है जिसका केन्द्र सर्वत्र है, और घेरा या परिधि कहीं नहीं। यह देव-वृत्त या ईश्वर-वृत्त है। ये मुक्त पुरुष हैं, अर्थात् सारे कष्ट, भय, शारीरिक कामनाओं और स्वार्थपरता से मुक्त हैं। ये स्वाधीन मनुष्य हैं। क्या सीधी रेखा में हम कोई स्वार्थपरायणता नहीं पाते हैं? सीधी रेखा सीधी रेखा है, अर्थात् उसमें कहीं पर भी कोई झुकने वाला स्थान या अधीन करने वाला विषय-बिन्दु हम नहीं देखते। यह आकाश से होकर गुजरती है, कोई स्वार्थी छोटा केन्द्र ऐसा नहीं है जिसका यह चक्कर काटे, कोई भी चीज इसे घुमानेवाली नहीं है। यहाँ स्वार्थपरता का विनाश हो जाता है, अथवा आप कह सकते हैं कि यहाँ वास्तविक आतमा की उपलब्धि होती है। आप देखते हैं कि हमने बिन्दु-वृत्त अर्थात् स्थूल स्वार्थपरता से प्रारम्भ किया था और अब उस छोटे से बिन्दु ने बढ़, फैल और बिकसित होकर सीधी रेखा का रूप धारण किया है। ये देव-मनुष्य हैं। ये वे लोग हैं जिनका घर यह विशाल विश्व है, जात-पाँत, वर्ण, मत, समाज या देश जिनके लिए समान है। चाहे आप अंग्रेज हों या अमेरिकन, बौद्ध हों या मुसलमान, अथवा हिन्दू हों या कोई भी हों, आप राम की आत्मा हैं। आप उसकी आत्मा की भी आत्मा हैं। यहाँ (शुद्ध) स्वार्थपरता की अद्भुत वृद्धि हो गई है, यह एक विचित्र प्रकार की स्वार्थपरायणता है। विशाल संसार मैं स्वयं हूँ। विश्व इस मनुष्य की आत्मा है। विशाल जगत्, छोटे से छोटा प्राणी, खनिज वनस्पति इत्यादि इन सब की आत्मा इन मनुष्य की आत्मा हो जाती है।

इस पूर्ण मुक्तावस्था को पहुँचे हुए महात्मा के पास एक शिष्य आया और लगभग एक वर्ष भर उसकी सेवा में रहा। शिष्य जब गुरु से बिदा होने लगा, तो भारतीय रीति के अनुसार वह झुक कर

चरण छूने तथा साष्टांग दण्डवत् करने लगा। गुरु ने मुस्कराते हुए उसे उठाया और कहा, "प्यारे ! तुम्हारी शिक्षा अभी पूर्ण नहीं हुई। अभी तुममें बड़ी कमी है। कुछ काल तक और ठहरो।" कुछ दिन गुरुदेव के पवित्र सत्संग में वह और रहा, और अधिकाधिक अनुभव-ज्ञान प्राप्त करता रहा। उसकी वृत्ति आत्माकार हो गई। वह शुद्ध आत्मस्वरूप हो गया। वह गुरु के पास से चला गया, उसे यह भी ध्यान नहीं रहा कि वह चेला है या स्वयं गुरु। समग्र संसार, विशाल विश्व को अपनी वास्तविक आत्मा समझता हुआ वह चल दिया। और समग्र संसार जब उसकी वास्तविक आत्मा हो गया, तो वह आत्मस्वरूप कहाँ जा सकता था? जब आत्मा प्रत्येक अणु और परमाणु में व्याप्त है, प्रत्येक अणु और परमाणु को परिपूर्ण किये है, तो वह कहाँ जा सकता है? ऐसे पुरुष के लिए जाने और आने की बात निरर्थक हो जाती है। आप एक स्थान से दूसरे स्थान को तभी जा सकते हैं, जब जिस स्थान को आप जाना चाहते हों वहाँ पहले ही से न हो। अब वह अपने को अर्थात् अपने शुद्ध आत्मा को; वा अन्तरात्मा को, अथवा सर्वव्यापी परमात्मा को पा चुका था, तो आने-जाने का विचार उसे कैसे हो सकता था? जाने और आने के विचार उसके लिए लोप हो गये। वह आत्मानुभव की अवस्था में था। शरीर का जाना एक प्रकार की स्वतः क्रिया थी। वह स्वरूप में स्थित था, उसके लिए जाना या आना कैसा? तब गुरु जी संतुष्ट हुए। इस प्रकार गुरु जी ने उसे जाँचा और ठीक खरा पाया। शिष्य ने गुरु को धन्यवाद नहीं दिया और न प्रणाम किया। इस दर्जे तक वह एकता में लीन हो गया कि धन्यवाद की भावना भी बहुत पीछे छूट गई। तब गुरु ने जाना कि उसने मेरे उपदेशों का ठीक-ठीक मर्म समझा है। यह पूर्णावस्था है, जिसमें यदि आप उसका आदर

करते हैं, तो वह कहता है कि तुम मेरा निरादर कर रहे हो। "मैं इस शरीर में परिच्छिन्न नहीं हूँ, मैं यह छोटा सा शरीर मात्र नहीं हूँ, मैं विशाल विश्व हूँ, मैं तुम हूँ, और अपने ही में मेरा सम्मान करो।" यह उस मनुष्य की अवस्था है जो कोई वस्तु तुम्हारे हाथ बेंचता नहीं है। यह उस मनुष्य की दशा है, जिसके लिए शरीर का मान और अपमान निरर्थक हैं, यश और अपयश कुछ भी नहीं हैं।

भारत में एक साधु के पास एक मनुष्य, जो युवराज था, आया और साष्टांग दण्डवत् की। साधु ने युवराज से इस दण्डवत्-प्रणाम का कारण पूछा। युवराज ने कहा, "महाराज! पूज्य महात्मा जी! आप साधु हैं और आपने तो उस राज्य को त्याग कर, जिसके आप पहले शासक थे, यह आश्रम ग्राहण किया है। आप बड़े त्यागी महानुभाव हैं, इसलिए मैं आप को ईश्वरवत् समझता हूँ और आप की उपासना करता हूँ।" आप जानते हैं, भारत में मनुष्यों का अधिक आदर धन के कारण नहीं होता है। भारत में लोगों का आदर उनकी त्यागावस्था के अनुसार होता है और वहाँ (भारत में) मान का प्रधान कारण यहाँ (अमरीका) से भिन्न है। सर्वशक्तिमान् लक्ष्मी (रुपये) की अपेक्षा परमात्मा पर अधिक भरोसा किया जाता है। युवराज त्यागी पुरुष का सत्कार कर रहा था। साधु ने युवराज को उत्तर दिया, "यदि इसी कारण से तुम मुझे प्रणाम कर रहे हो, तो मुझे तुम्हारे चरण धोना चाहिए, मुझे तुम्हारे आगे झुक कर प्रणाम करना चाहिए क्योंकि ऐ युवराज! इस संसार के साथ साधुओं के त्याग से तुम्हारा त्याग अधिक है।" यह बड़ी ही विचित्र बात है। ऐसा कैसे हो सकता है? तब साधु ने समझाना शुरू किया "कल्पना करो कि एक मनुष्य एक विशाल भवन का स्वामी है और उसका कूड़ा-करकट वह बाहर फेंक देता है। वह घर का केवल गर्द-गुबार त्यागता या बाहर

फेंकता है। क्या वह त्यागी है ?" युवराज ने कहा, "नहीं, कदापि नहीं, वह त्यागी नहीं है।" इसके बाद साधु ने कहा, "दूसरा आदमी घर का कूड़ा-करकट तो जमा करता है और सारा मकान, विशाल भवन त्याग देता है। इस मनुष्य को तुम क्या समझोगे ?" युवराज ने कहा, "वह जो केवल कूड़ा-करकट संचय करता है और भवन त्याग देता है, त्यागी मनुष्य है।" इस पर साधु ने कहा, "भाई युवराज! तब तो तुम्हीं त्यागी हो, क्योंकि वास्तविक आत्मा अर्थात् परमेश्वर को, जो विशाल भवन है, जो निज धाम है, जो बैकुण्ठ है, बल्कि जो स्वर्गों का भी स्वर्ग है, तुमने त्याग दिया है, और केवल उसका कूड़ा-करकट, यह शरीर, यह तुच्छ स्वार्थपरायणता तुमने रख छोड़ी है। मैंने कुछ भी नहीं त्यागा है। मैं स्वयं ईश्वरों का ईश्वर हूँ, अर्थात् संसार का स्वामी हूँ।"

कभी-कभी इन लोगों को अर्थात् इन सिद्ध पुरुषों को जो उन्नति की परम अवस्था में पहुँच गये हैं, कुछ लोग तुच्छ व अपमानित समझते और सनकी कहते हैं। किन्तु जरा इनसे पूछिये तो सही कि भला एक क्षण के लिए भी ये अपना निजानन्द अथवा परम सुख जो इन्हें ब्रह्ममयी अवस्था से प्राप्त होता है, संसार की समस्त सम्पत्ति और वैभव से बदलने को तैयार हैं? कदापि नहीं, कदापि नहीं। विषय-सुखों के द्वार पर, अर्थात् रक्त-मांस की देह के द्वार पर जा जा कर हाथ फैलाने वाले नाममात्र सम्पत्तिशाली पुरुषों के भिखारीपन को ये महात्मा तुच्छ समझते और करुणा की दृष्टि से देखते हैं। आनन्द आपके भीतर है। तो फिर शोचनीय और पीड़ित अवस्था में इधर-उधर भटक कर भिखारी का स्वाँग धर, क्षुद्र कण का सा बर्ताव क्यों करते हो? आओ, अपनी पवित्रात्मा अर्थात् सर्वशक्तिमान परमेश्वर का अनुभव करो, और पूर्णानन्द में लीन अवस्था से निम्नलिखित गीत बहने दो।

"I am the mote in Sunbeam, I am the burning Sun,
Rest here !" I whisper the atom. I call to the orb, "Roll on,
I am the blush of the morning, and am the evening breeze,
I am the leaf's low murmurs, the swell of the terrible seas;
The lover's passionate pleading, the maiden's whispered fear;
The warrior, the blade that strikes him, his mother's heart wrung far,
The rose, her poet nightingale, the songs from the throat that rise,
The flint, the sparks, the taper, the moth that about it flies,
I am intoxication, grapes, wine-press and musk and wine,
The guest, the host, the traveller, the goblet of crystal fine."

मैं कण हूँ रवि की किरणों में, भानु प्रज्वलित भी मैं हूँ।
'ठहरो' ऐसा अणु-के कान में मैं धीमे से कहता हूँ,
'चले चलो' ऐसी आज्ञा मैं भूमण्डल को देता हूँ।
मैं उषा की लाली हूँ और साँझ समय की मन्द समीर।
मन्द ध्वनि हूँ पत्ती की और क्षोभ हूँ भीष्म सागर का।

प्रेमी की मैं प्रबल विनय हूँ, युवती की कोमल भय बानी।
योधा मैं हूँ और शस्त्र धारा जो उसे हनन करे है वह भी मैं हूँ।
और उसकी माता का हृदय बिदारण भय भी मैं हूँ।
पुष्प गुलाब हूँ, कवि बुलबुल हूँ और गले से उठते गीत।
चकमक पत्थर, चिङ्गारी हूँ और दीपक की हूँ लौ।
पतङ्ग हूँ, जो घूमे है उसके चारों ओर।
नशा हूँ, अंगूर, मुश्क, मद्य और भभका मैं हूँ।
अतिथि, यजमान, यात्री और शुद्ध स्फटिक का प्याला मैं हूँ।

Oh ! The splendour and glory of yourself makes
the pomp of kings ridiculous.
Such a wonderous Heaven you are, Existence,
knowledge and Bliss you are.
Om ! Om !! Om !!!

अरे ! तुम्हारे आत्मा की विभूति और महिमा इन राजाओं के आडम्बर को लज्जित और हास्यास्पद करती है।

ऐसा विचित्र बैकुण्ठ तुम हो और सच्चिदानन्द तुम हो।

ओ३म् ! ओ३म् !! ओ३म् !!!

सान्त में अनन्त।

—:o:—

[ता० १० जनवरी १६०३ को अमेरिका के सैनफ्रांसिस्को के गोल्डन गेट हाल में दिया हुआ व्याख्यान]

—:o:—

महिलाओं और सज्जनों के रूप में एक अनन्त स्वरूप !

विषय पर आने के पूर्व संसार जिस प्रकार के श्रोता साधारणतः जुटा दिया करता है, उस पर कुछ शब्द कहना आवश्यक है।

लोग साधाणत: अपने कानों से नहीं सुना करते, दूसरों के कानों से सुनते हैं। वे अपनी आँखों से नहीं देखते, अपने मित्रों की आँखों से देखते हैं। वे अपनी रुचि से काम नहीं लेते, दूसरों की रुचि से काम लेते हैं, कैसा बेतुकापन है ! संसारी मनुष्यो ! हर मौके पर अपने कानों और अपने नेत्रों से काम लो। हर अवसर पर अपनी ही समझ को काम में लाओ। तुम्हारी अपनी आँखें और कान बेमतलब नहीं हैं, वे व्यवहार के लिए हैं।

राम एक दिन सड़क पर जा रहा था। एक भलेमानुस ने आकर कहा, "यह पोशाक तुम किस अभिप्राय से पहनते हो ? ऐसी पोशाक तुम क्यों पहनते हो ? इससे तुम हमारा ध्यान क्यों खींचते हो ?" राम सदा मुस्कराता और हँसता है। यदि भारतीय साधुओं के पहनावे से आप प्रसन्न होते हैं, तो राम को आप की प्रसन्नता से आनन्द है। यदि यह पोशाक आपके हर्ष और हास्य का कारण होती है, तो हमें आप की मुस्कराहटों से सुख प्राप्त होता है। आप का मुस्कराना हमारा मुस्कराना है।

किन्तु, कृपया समझदार बनिये। समाचार-पत्रों ने यदि किसी की प्रशंसा या विरोध में एक शब्द लिख दिया, तो सारे समाज के विचार वैसे ही होने लग जाते हैं। लोग कहने लगते हैं, समाचार-पत्र ऐसा कहते हैं, समाचार-पत्र वैसा कहते हैं। समाचार-पत्रों की तह में क्या है? साधारणत: लड़के और नारियाँ समाचार-पत्रों के संवाद-दाता होते हैं। सब समाचार चौथी और कभी-कभी दसवी श्रेणी के संवाददाताओं से मिलते हैं, न कि विद्वान् विचारकों से। यदि एक मनुष्य, नगर-नायक, किसी की प्रशंसा करने लगता है, यदि एक ऐसा मनुष्य जो बड़ा आदमी समझा जाता है, किसी आदमी का आदर करने लगता है, तो सबके सब उसी एक मनुष्य की ध्वनि को दोहराने और प्रतिध्वनित करने लगते हैं। यह स्वतंत्रता नहीं है। स्वाधीनता और स्वतंत्रता का अर्थ है हर मौके पर अपने कानों को काम में लाना, हर मौके पर अपनी आँखों का उपयोग करना।

जिस मनुष्य ने यह पोशाक पहनने का कारण पूछा था, उससे राम ने कहा "प्यारे, भाई, यह तो बताओ कि इस रंग के कपड़े क्यों न पहनना चाहिए? और किसी दूसरे रँग के क्यों पहनना चाहिए? राम इसके स्थान में काला अथवा सफेद रंग क्यों पहने? कृपया कारण बताइये। कोई बुराई बताइये। आप क्या दोष पाते हैं?" वह कोई दोष न बता सका। उसने कहा, "यह रंग भी उतना ही सुखद है, जितना मेरा। तुम्हारा यह कपड़ा भी सर्दी और गर्मी से तुम्हारी रक्षा वैसी ही करता है जैसी कि मेरा। यह रंग भी उतना ही अच्छा है जितना कि कोई दूसरा, और चाहे जौन सा कपड़ा पहना जाय, वह किसी न किसी रंग का तो होगा ही। यदि वह काला है, तो रंग रखता है, यदि हरा है, तो रंगवाला है, और यदि गुलाबी

हैं, तो भी रंगवाला है। कोई न कोई रंग का तो वह अवश्य होगा। किसी न किसी रंग का होने से वह बच नहीं सकता।"

अब आप बतावें कि, इस रंग में आप क्या ऐब समझते हैं। वह कोई दोष न बता सका। तब राम ने उससे कहा, "आप अपने ऊपर कृपा कीजिये; अपनी आँखों पर कृपा कीजिये, अपने कानों पर कृपा कीजिये; अपने नेत्रों और कानों से काम लीजिये; तब निर्णय कीजिये; दूसरों की सम्मतियों के द्वारा फैसला मत कीजिये। दूसरों की मतों से मोहित मत हूजिये, अथवा दूसरों के मतों के चेरे मत बनिये। दूसरों के चेरे होने की कमजोरी से मनुष्य जितना अधिक बचा हुआ है, उतना ही अधिक वह स्वाधीन है।"

राम की इच्छा है कि इन व्याख्यानों को सुनने में आप अपने ही कानों और बुद्धियों से काम लें। आप ही नतीजा निकालें। **यदि ठीक तरह पर आप इन व्याख्यानों को सुनेंगे तो, राम वचन देता है, कि आपको इनसे विशेष लाभ होगा। आप सब चिन्ता, भय और क्लेशों से परे हो जायँगे।**

आप जानते हैं, लोग कहते हैं कि वे धन चाहते हैं। भला बताइये! आप धन किस लिए चाहते हैं? आप आनन्द के लिए धन चाहते हैं, किसी और के लिए नहीं। और धन से आनन्द मिलता नहीं। अब मैं उस वस्तु को बतलाता हूँ जिससे आपको आनन्द मिलेगा। कुछ कहते हैं, हम ऐसे व्याख्यान सुनना चाहते हैं, जो मर्मस्पर्शी हों, जो हमारे दिलों में गड़ जावें; अर्थात् हम ऐसे व्याख्यान चाहते हैं, जो प्रत्यक्ष और तुरन्त प्रभाव पैदा करने वाले हों। बच्चे मत बनिये। बच्चे को एक सोने की मुद्रा और एक मिसरी का टुकड़ा दिखाइये। बच्चा तुरन्त मिसरी का टुकड़ा ले लेगा, जो तुरन्त मिठास का प्रभाव पैदा करता है। वह सोने या चाँदी की मुद्रा न लेगा। बच्चे मत बनिये।

कभी कभी व्याख्यानों और वक्तृताओं का तुरन्त प्रभाव पड़ता है। किन्तु वे केवल मिसरी-वत् होते हैं, उनमें स्थिर और स्थायी कुछ भी नहीं है। अब आप एक ऐसी बात सुनिये जो आप पर अत्यन्त स्थिर और स्थायी प्रभाव डालेगी। विश्वविद्यालयों में, लोग घंटों लगातार शिक्षकों और अध्यापकों के उपदेश सुनते हैं। अध्यापक किसी प्रकार की वक्तृत्व-शक्ति नहीं प्रकट करते और न अलंकार शास्त्र के नियमों का ही पालन करते हैं। अध्यापक साधारणत: अपने विद्यार्थियों को धीरे-धीरे, शान्त भाव से, अटकते हुए उपदेश देते हैं। किन्तु, अध्यापक में तुरन्त प्रभाव उत्पन्न करने की शक्ति हो या न हो, विद्यार्थियों को उसके मुख से निकले हुए प्रत्येक शब्द को ग्रहण करना पड़ता है।

ऐसे ही राम आज संसार को उपदेश देता है। संसार को उसके शब्द उसी भाव से सुनने चाहिये, जिस भाव से महाविद्यालय के विद्यार्थी अपने अध्यापकों की बातें सुनते हैं। आप चाहे कहें कि ये शब्द अभिमान भरे हैं, किन्तु हाँ वह समय आ रहा है जब.................*

आज के विचार का विषय है सान्त में अनन्त अर्थात् परिच्छिन्न में अपरिच्छिन्न। तत्व शास्त्र और ज्ञान को लोकप्रिय बनाना बड़ी ही कठिन बात है। किन्तु सुकरात कहता है, और उसका कथन बिलकुल ठीक है, कि "ज्ञान ही धर्म या बल है।" यही भाव अन्त में मानव जाति पर शासन करेगा। ज्ञान ही मानव जाति पर शासन करता है,

* यहाँ पर राम बिलकुल मौन होकर इस विचार में डूब गये कि एक दिन यह समस्त संसार आध्यात्मिक जीवन के सोते से जी भर कर अमृत पीने को बाध्य होगा, और जो ध्येय वे बता रहे थे वही मनुष्य मात्र का लक्ष्य होगा।

ज्ञान ही कार्य में परिवर्तित होता है। लोग पहले से बना-बनाया काम चाहते हैं, परन्तु पहले से बना-बनाया काम स्थायी नहीं होता। राम तुम्हें ऐसा ज्ञान दे रहा है, जो तुम्हें कर्म की अनन्त शक्ति में बदल देगा। इसे लोकप्रिय बनाना कठिन है। इस कठिन और गूढ़ समस्या को यथासम्भव सरल बनाने का हम भरसक उद्योग करेंगे।

इस ससार की जो अति छोटी चीज तुम्हारी धारणा में आ सकती है, जो छोटी से छोटी वस्तु आप इस संसार में प्रायः देखते हैं, उसी से हम आरम्भ करेंगे। पोस्त का बीज कह लीजिये, अथवा सरसों का बीज मान लीजिये, अथवा कोई छोटा बीज जो आपके मन में आवे, उस अत्यन्त छोटे बीज को अपने सामने हथेली पर रखिये। यह बीज क्या है? जिसे आप अपने सामने देख रहे हैं, अथवा सूँघ रहे हैं, या तौलते हैं, या जिसे आप छू सकते हैं, क्या यही बीज है? क्या यह नन्हीं सी चीज बीज है? अथवा बीज कोई दूसरी ही चीज है? आओ, परीक्षा करें।

इस बीज को जमीन में बो दो। बहुत ही थोड़े समय में बीज अंकुरित होकर सुन्दर, कल्ले निकालता हुआ पौधा हो जाता है, और उस मूल-बीज से हमें फिर यथासमय हजारों बीज मिलते हैं। इन हजारों बीजों को बो दीजिये और उसी तरह के लाखों बीज हमारे हाथ लगते हैं। इन लाखों बीजों को बो दीजिये, उसी तरह के करोड़ों बीज हम फिर पा जायँगे। इस चमत्कार से क्या स्पष्ट होता है? मूल-बीज, पहला बीज, जिससे हमने शुरू किया था, वह अब कहाँ है?

वह भूमि में नष्ट हो गया, पृथिवी में मर गया। वह अब कहीं देखने को नहीं आता। किन्तु उस मूल बीज से आज हमें उसी तरह के करोड़ों और अरबों बीज प्राप्त हैं। ओह! उस प्रारम्भिक मूल-बीज

में, जिससे हमने श्रीगणेश किया था, कैसी अनन्त शक्ति, सामर्थ्य, और अनन्त योग्यता गुप्त या सुप्त थी।

अब फिर प्रश्न होता है। यह एक बीज है, यह पोस्त या सरसों का छोटा सा बीज है, इस कथन से आपका अभिप्राय क्या है? इस वाक्य से आपका मतलब क्या है? क्या आपके बिचार में बीज शब्द का अर्थ केवल उसकी आकृति, परिमाण, तौल और गन्ध है? क्या बीज-रूप से अभिप्राय वास्तव में रूपों का केवल वाह्य केन्द्र है, नहीं, नहीं। हम एक ऐसा नकली बीज बना सकते हैं कि जिसका न केवल तौल, रङ्ग और गन्ध किन्तु स्वाद भी ऐसा हो जैसा कि असली बीज का। परन्तु यह बनावटी बीज वास्तव में बीज नहीं कहा जा सकता, यह असली सच्चा बीज नहीं कहा जा सकता, यह केवल एकरूप होगा, लड़कों के खेलने का खिलौना होगा, न कि बीज। इस प्रकार हम देखते हैं कि बीज शब्द का एक वाच्य या बाह्य अर्थ है, और एक लक्ष्य या असली अर्थ है। बीज शब्द का बाह्य अर्थ है, रूप, परिमाण, तौल या ऐसे गुण जिनको हम अपनी इन्द्रियों से जान सकते हैं। किन्तु बीज शब्द का असली अर्थ है, अनन्त शक्ति, अनन्त सामर्थ्य, अनन्त संभाव्यता, जो बीज रूप में छिपी हुई है। यहाँ हम सान्त में अनन्त देखते हैं। सान्त रूप या आकृति में जो अपार सामर्थ्य या अनन्त शक्ति छिपी हुई है, और जो बीज शब्द का असली अर्थ है, वह बीज का भीतरी अनन्त है, न कि उसका बाह्य या बाहरी रूप।

अब बतलाइये कि इस रूप या आकृति की मृत्यु के साथ-साथ क्या उस अनन्त शक्ति का नाश हो जाता है? बीज का रूप मृत्यु को प्राप्त होता है, बीज का रूप या बाह्य बीज पृथ्वी में नष्ट होजाता है किंतु क्या असली बीज अर्थात् भीतरी अनन्त भी नाश को प्राप्त होता है।

नहीं, नहीं, बिल्कुल नहीं। अनन्तता की मृत्यु कैसे हो सकती है ? उसका नाश कभी नहीं होता। आज हम वह बीज लेते हैं, जो, मान लीजिये प्रारम्भिक बीज की हजारवीं सन्तति है। इस बीज को हम उठाते हैं। फिर बोइये, इसे फिर भूमि में रोपिये। आप देखेंगे कि इसमें भी वृद्धि वा विकास की वही अनन्त शक्ति मौजूद है, जो प्रथम बीज में थी। मूल बीज की करोड़वीं सन्तति में भी वही अनन्त सामर्थ्य और शक्ति वर्तमान है, जो मूल बीज में थी।

बस, हम देखते हैं कि बीज शब्द का वास्तविक अर्थ, जो भीतरी अनन्तता है, वह प्रथम बीज की भी वही है जो प्रथम बीज की हजारवीं सन्तति की है। और यह अनन्तता प्रथम बीज की पन्द्रहवीं पीढ़ी में भी समान बनी रहेगी। इससे हमें पता चलता है कि भीतरी अनन्तता, अथवा अनन्त शक्ति या सामर्थ्य निर्व्यय और निर्विकार है, और हम यह भी देखते हैं कि वास्तविक बीज, अनन्त शक्ति, अनन्त सामर्थ्य का नाश नहीं होता। मूल बीज का रूप नष्ट हुआ, परन्तु शक्ति नहीं नष्ट हुई। शक्ति फिर सहस्त्रवीं पीढ़ी के बीजों में अपरिवर्तित और बेबदली प्रकट होती है। बीज के भीतर की सच्ची अनन्तता बीज के देह की मृत्यु के साथ अथवा बीज के रूप के नाश के साथ नष्ट नहीं होती। राम कहेगा बीज की मानो यह आत्मा, दूसरे शब्दों में, बीज की वास्तविक अनन्तता नाश को नहीं प्राप्त होती; यह बदलती नहीं; कल, आज, और सदा यह ज्यों की त्यों बनी रहती है। पुनः आज हम जो बीज लेते है उनमें भी फैलाव और वृद्धि की अनन्त शक्ति वही है, जो प्रथम बीज में थी। यह बदलती नहीं ; यह कल, आज और सदा एकसां रहती है। आज फिर हम जिन बीजों को लेते

हैं, उनमें भी फैलाव और वृद्धि की वही अनन्त शक्ति वर्तमान है, जो प्रथम बीज में थी। न तो वह जरा सी भी बढ़ती है, न घटती है।

हम देखते हैं कि बीज शब्द के असली अर्थ, या हम कहेंगे, कि बीज़ की आतमा या जान, न बढ़ती है और न घटती है। संक्षेप में, असली बीज कल, आज और सदा एकसाँ है। वह अनन्त है। बीज के रूप अथवा बीज रूप की देह के नाश के साथ उसका नाश नहीं होता। वह अविनाशी है, निर्विकार है। उसमें कोई कमी या अधिकता नहीं हो सकती। (पुनरुक्ति हो तो राम को आप क्षमा करें; क्योंकि राम समझता है, कभी कभी पुनरुक्ति की आवश्यकता है।)

क्या आप जानते हैं कि छोटे छोटे जन्तु, जिन्हें आप अति सूक्ष्म कीड़े कह सकते हैं, कैसे बढ़ते हैं? कलल+ का, जिसे लघुतम या प्रारम्भिक जन्तु भी कभी कभी कहते हैं, आदि विकास कैसे होता है? पदार्थ-विज्ञानियों (नैचुरलिस्ट्स naturalists) की भाषा में छोटे छोटे जन्तुओं की वृद्धि दो समान खण्ड होने से होती है। यह समान खण्डन प्राकृतिक नियम से होता है। हम भी ऐसा कर सकते हैं। इन क्षुद्र जन्तुओं अर्थात् नन्हें नन्हें कीड़ों में से एक ले लीजिये। किसी उत्तम, अति पैनी शलाका (नश्तर) से इसके दो बराबर टुकड़े कर डालिये। इसकी क्या गति होगी? ओह! यह बड़ा निठुर कर्म है। यदि हम किसी मनुष्य को दो भागों में काट दें,

---

+स्थूल शरीर का आदि रूप, अण्डे के भीतर का सा अर्धतरल सफेद पदार्थ जिसे अंग्रेजी में प्रोटोप्लैज्म (Protoplasm) या प्रोटोजोआ (Protozoa) कहते हैं।

यदि हम उसके शरीर में कटार भोंक कर दो टुकड़े कर डालें, तो वह मर जायगा। इसी तरह अगर हम इस क्षुद्र जन्तु के दो टुकड़े करेंगे तो मर जायगा। किन्तु क्षुद्र जन्तु को काट डालिये, वह मरता नहीं, दो हो जाता है। कैसी अत्यन्त अद्भुत लीला है! उसके दो टुकड़े कर डालिये, और वह दो हो जाता है, दोनों एक समान। अब इन दोनों को लीजिये और काट डालिये। फिर हर एक के दो—दो समान टुकड़े करिये और उनके मरने के बदले आपको चार जीते जन्तु उसी शक्ति और बल के प्राप्त होंगे, जैसे कि मूल जन्तु। आपको चार जीते जन्तु मिलेंगे। इन चारों के दो-दो बराबर के टुकड़े कर डालिये और चार को मारने के बदले आप उन्हें बढ़ाकर आठ बना देंगे। इसी प्रकार, जहाँ तक आपकी इच्छा हो, बढ़ाते चले जाइये। आप उनकी संख्या यथेच्छा बढ़ा सकते हैं। कैसा आश्चर्य है।

वह देखिये, आपके सामने एक जन्तु का रूप या जन्तु का शरीर है। मैं जन्तु शब्द का वाच्य या बाह्य अर्थ व्यवहार में ला रहा हूँ। वाह्य अर्थ केवल शरीर, रूप, परिणाम, तौल रंग, आकृति है। वाह्य रूप से जन्तु यही है। किन्तु वास्तविक जन्तु उसकी आन्तरिक शक्ति, अथवा बल, व भीतरी जीवन है। यह है असली जन्तु। वाह्य जन्तुओं को मार डालिये, रूप को नष्ट कर दीजिये, किन्तु वास्तविक जन्तु अथवा आत्मा, आप इसे सार कह सकते हैं, मरता नहीं। वह मरता नहीं, वह ज्यों का त्यों बना रहता है। शरीरों को काटते, शरीरों को नष्ट करते जाइये। शरीर की मृत्यु से वास्तविक आत्मा का नाश नहीं होता, उससे केवल रूप का नाश होता है।

वास्तविक आत्म-देव, जो तुम हो, अमर है। जन्तु का मूल शरीर लाखों गुना बढ़ाया जा सकता है, बढ़ाकर कोटियों गुना किया जा सकता है। और यह है अनन्त शक्ति मूल जन्तु के शरीर में छिपी हुई। यही है सान्त में अनन्त। परिच्छिन्न में अपरिच्छिन्न।

अब प्रश्न होता है, जब शरीर गुणित व वर्द्धित होते हैं जब जन्तु के शरीर बढ़ते वा बहु संख्यक होते जाते हैं, तब क्या वह भीतरी अनन्त शक्ति भी बढ़ती जाती है? अथवा वह घटती है? नहीं, वह न तो घटती है न बढ़ती है। जन्तु के बाहरी देखने मात्र सान्त रूप के अन्तर्गत वास्तविक अनन्तता नहीं बदलती, वह बढ़ती नहीं, वह घटती नहीं, वह वही रहती है।

इस अद्‌भुत क्रिया (वा दृश्य) की व्याख्या वेदांत में एक उदाहरण द्वारा की जाती है।

एक छोटा बच्चा था जिसको दर्पण कभी नहीं दिखाया गया था। आप जानते होंगे, भारत में अर्थात् हिन्दुस्थान में छोटे बच्चों को दर्पण नहीं दिखाया जाता। यह छोटा बच्चा एक बार घिसल कर अपने पिता के कमरे में पहुँच गया। वहाँ फर्श पर एक दर्पण था, जिसका एक सिरा तो दिवाल में लगा हुआ था ओर दूसरा सिरा भूमि पर था। यह छोटा बच्चा शीशे के पास घिसल कर चला गया। अब देखिये! वहाँ उसने एक बच्चा अर्थात् छोटा बच्चा वा प्यारा छोटा बच्चा देखा। आप जानते हैं, बच्चे सदा बच्चों से आकृष्ट होते हैं। यदि आप के बच्चा हो और उसे साथ अपने मित्र के घर आप ले जाइये तो, जब अपने मित्र से आप बातचीत करेंगे, बच्चा

तुरन्त उस घर के बच्चों से दोस्ती जोड़ लेगा । इस बच्चे ने आइने में अपने ही डील - डौल का एक बच्चा देखा । वह उसके पास गया । जब वह दर्पण बच्चे के पास खिसक रहा था तब दर्पणी बच्चा भी उसकी ओर बढ़ रहा था । वह खुश हुआ । उसने देखा कि दर्पण वाला बच्चा स्नेह दिखा रहा है, मुझे उतना ही चाहता है, जितना मैं उसे चाहता हूँ । उनकी नाकें मिलीं । उसने अपनी नाक शीशे में लगाई और शीशे वाला बच्चा भी अपनी नाक उसकी नाक तक ले गया ; दोनों नाकों का स्पर्श हुआ । उनके ओठ मिले । उसने अपने हाथ शीशे पर रक्खे और शीशे वाले बच्चे ने भी अपने हाथ उसके हाथों की ओर बढ़ाये, मानो वह उससे हाथ मिला रहा है । किन्तु इस बच्चे के हाथ जब शीशे वाले हाथों पर थे तब शीशा गिर कर दो टुकड़े हो गया । अब बच्चे ने देखा कि शीशे में एक के बदले दो बच्चे हैं । दूसरे कमरे में बच्चे की माँ ने यह शब्द सुना । वह दौड़ कर अपने पति के कमरे में आई और देखा कि पति वहाँ नहीं हैं । किन्तु बच्चा कमरे की चीजों की गत बना रहा है और शीशा तोड़ डाला है । वह इस तरह बिगड़ती और धमकाती हुई उसके पास गई कि मानों मारेगी । किन्तु आप जानते हैं, लड़के खूब समझते हैं । जानते हैं कि माताओं की धमकियां घुड़कियां और लाल पीली आँखें निरर्थक होती हैं । वे अनुभव से यह बात जानते हैं । ''तूने क्या किया'', ''तूने क्या किया'', ''तू यहाँ क्या कर रहा है'', माता के इन वाक्यों से बच्चा डरा नहीं । उसने इन शब्दों को घुड़की वा धमकी न समझ कर दुलार समझा । उसने कहा, ''ऐं ! मैंन दो कर दिये, दो बना दिये, दो बना दिये'' । बच्चे ने एक बच्चे से दो बच्चे बना दिये । मूल में एक बच्चा था, जो दर्पण वाले एक बच्चे से बात चीत कर रहा था । अब इस बच्चे ने दो बच्चे बना दिये । एक छोटा बच्चा बालिग होने के पहले

ही दो बच्चों का बाप हो गया। उसने कहा, "मैंने दो बनाये हैं, मैंने दो बना डाले"। माता मुस्कराई और बच्चे को गोदी में लेकर अपने कमरे में चली गई।

दर्पण के ये दोनों खण्ड लीजिये। इन्हें तोड़िये, कसर न किजिये, आप को अधिक दर्पण मिलेंगे। इन खण्डों को तोड़ कर चार खण्ड बनाइये, और आपको चार बच्चे मिलेंगे। शीशे के इन चार खण्डों को तोड़ कर आठ बनाने से छोटा बच्चा आठ बच्चों की सृष्टि कर सकता था। इस रीति से मनमानी संख्या में बच्चों की सृष्टि की जा सकती है। किन्तु हमारा प्रश्न है, क्या वह असली आत्म-देव, क्या वह असली बच्चा शीशों के टूटने से बढ़ता या घटता है? वह न बढ़ता है न घटता है। कमी और ज्यादती केवल शीशों में होती है। दर्पण में आप जिस बच्चे को देखते हैं, उसमें कोई अधिकता नहीं होती, वह ज्यों का त्यों बना रहता है। अनन्त कैसे बढ़ सकता है? अनन्तता यदि बढ़ती है, तो वह अनन्तता नहीं है। अनन्तता घट कैसे सकती है? घटती है, तो वह अनन्तता नहीं है।

इसी भांति, जन्तु के दो खण्ड होने की क्रिया की वेदान्त में व्याख्या यह है कि जब आप अति क्षुद्र कीड़े के दो समान खण्ड करते हैं, तब शरीर अर्थात् वह लघु शरीर, जो ठीक दर्पण के तुल्य है अर्थात् ठीक शीशे के समान है, दो भाग हो जाता है। किन्तु शक्ति अर्थात् भीतरी वास्तविक अनन्तता, या असली जन्तु अथवा सच्ची आत्मा या शक्ति, कोई भी नाम आप इसका रखलें, अथवा भीतर का सच्चा परमात्मा, जन्तु के दो भाग होने से विभक्त नहीं होता। जन्तु के शरीरों के गुणन के साथ साथ असली जन्तु की शक्ति, अर्थात् भीतरी आत्म-देव

की वृद्धि नहीं होती। वह ज्यों का त्यों बना रहता है। वह असली बच्चे के समान है, और जन्तु के शरीर दर्पण के टुकड़ों के सदृश हैं। जब जन्तु के शरीरों के भाग और उपविभाग और पुन: भाग होते हैं, निर्विकार अनन्त शक्ति अपना प्रतिबिम्ब डालती रहती है, अपने दर्शन देती रहती है, हजारों और करोड़ों शरीरों में अपने को समान भाव से प्रकट करती है। वह वही बनी रहती है। वह केवल एक, केवल एक, केवल एक है, दो नहीं, बहु नहीं। ओ महा आश्चर्य ! कैसा आनन्द है! इस शरीर के दो भाग कर दो, इस शरीर को काट डालो, किन्तु मैं मरने का नहीं। वास्तविक स्वरूप, वास्तविक "मुझ" सच्ची "मैं" मरती नहीं। इस शरीर को जिन्दा जला दो. इसे तुम्हारा जो जी चाहे करो, मुझे कोई हानि नहीं होती। अनुभव करो, अनुभव करो कि तुम भीतरी अनन्तता हो। यह जानो। जिस क्षण कोई मनुष्य अपने को भीतरी अनन्तता जान लेता है, जिस क्षण मनुष्य को अपनी वास्तविकता का ज्ञान हो जाता है, उसी क्षण वह स्वाधीन हो जाता है; सम्पूर्ण भय, कठिनता, यातना, कष्ट और व्यथा से परे हो जाता है। यह जानो, जो वास्तव में तुम हो, सो बनो।

ओ! यह कैसा आश्चर्यों का आश्चर्य है कि, वह एक ही अनन्त शक्ति है, जो अपने को सब शरीरों में, सब देखने मात्र व्यक्तियों में, अर्थात् सब वाह्य रूपों में प्रकट करती है। ओह, वही 'मैं' है, वह असली 'मैं' है, वही एक अनन्त है, जो अपने को बड़े से बड़े वक्ताओं, महापुरुषों और घोर अभागे प्राणियों के शरीरों में प्रकट कर रहा है। ओह, कैसा आनन्द है! मैं अनन्त एक हूँ न कि यह शरीर। इसका अनुभव करो और आप

स्वतंत्र वा स्वाधीन हो। ये केवल शब्द नहीं हैं। यह केवल काल्पनिक बातचीत नहीं है। यह सच्ची से सच्ची असलियत है। सत्यतम वास्तविकाता, अर्थात् असली शक्ति को, जो तुम हो, प्राप्त करो। तुम अनन्त अनुभव करते ही सब आशंकाओं और कठिनताओं से तुरन्त दूर हो जाते हो।

मान लो कि यहाँ संसार में सहस्त्रों शीशे हैं। कोई काला है, कोई सफेद है, कोई लाल है, कोई पीला है, कोई हरा है। एक कूर्मपृष्ठाकार (convex) है, दूसरा पुटाकार (concave) है। मान लो कोई पहलदार (Prismatic) है और कोई गरारीदार अर्थात् छोटी वस्तु को बड़ी अथवा बड़ी को छोटी दिखाने वाला है। सब तरह के शीशे हैं। एक मनुष्य उन शीशों के नीचे खड़ा हुआ है। वह चारो ओर दृष्टि डालता है। एक जगह वह अपने को लाल देखता है। लाल शीशे में वह अपने को लाल पाता है। दूसरी जगह वह अपने को पीला पाता है, और तीसरी जगह वह अपने को काला पाता है। पुटाकार शीशे में वह अपनी आकृति विचित्र ढंग से विकृत देखता है। कूर्मपृष्ठाकार शीशे में वह फिर अपने को खूब हंसे जाने के योग्य विकृत देखता है। वह अपने को इन भांति भांति के रूपों और आकारों में देखता है। किन्तु इन सब वाह्य विभिन्न रूपों में एक अविभाज्य, निर्विकार, सर्वकालीन, निरन्तर सत्ता है। यह जानो और अपने को मुक्त करो। यह जानो और सब रंज दूर करो। इस सम्पूर्ण विकृति और कुरूपता का उस वास्तविक अनन्तता अर्थात् आत्मदेव से कि, जो इन समस्त विभिन्न शीशों तथा दर्पणों में अपने को प्रकट और आविर्भूत करता है, कोई सम्बन्ध नहीं है। भेद तुम्हारे शरीरों में है। शरीर, मन विभिन्न

शीशों के समान हैं। एक शरीर गरारीदार शीशे के तुल्य है, दूसरा पहलदार है। कोई सफेद, कोई लाल, कोई पुटाकार और कोई कूर्मपृष्ठाकार शीशे के समान है। शरीर विभिन्न हैं, किन्तु तुम केवल शरीर, अथवा बाह्य असत आत्मा नहीं हो। अज्ञान-वश तुम अपने को शरीर कहते हो, शरीर तुम हो नहीं। तुम अनन्त शक्ति, परमात्मा, निरन्तर, निर्विकार, निर्विकल्प, कैवल्य हो। वही तुम हो। यह जानते ही तुम अपने को समस्त संसार अखिल ब्रह्माण्ड में बसे हुए पाते हो।

हमारे भारत में शीशमहल होते हैं। शीश महलों की सब दीवालें और छतें तरह तरह के शीशों और दर्पणों से जड़ी होती हैं। मालिक मकान ऐसे कमरे में आता है, और अपने को सब ओर पाता है।

एक बार ऐसे एक शीशमहल में एक कुत्ता आ गया। कुत्ते ने अपनी दाहिनी ओर से कुत्तों के झुण्ड के झुण्ड अपनी ओर आते देखे। आप जानते हैं कुत्ते बड़े द्वेषी होते हैं। कुत्ता अपने सिवाय दूसरे कुत्ते को नहीं देख सकता। वे बड़े द्वेषी होते हैं। जब इस कुत्ते ने दाहिनी ओर से हजारों कुत्तों को अपनी ओर आते देखा, वह बाईं तरफ मुड़ा। इधर की दिवाल पर भी हजारों शीशे जड़े हुए थे। इधर से भी कुत्तों की एक सेना उसे खा लेने, टुकड़े टुकड़े कर डालने के लिये अपनी ओर आती दिखाई दी। वह तीसरी दिवाल की ओर घूमा। फ़िर भी उसे उसी तरह के कुत्ते दिखाई पड़े। चौथी दिवाल की ओर वह फिरा। अब भी वही गति। उसने छत की ओर सिर उठाया। वहाँ से भी हजारों कुत्ते उसे खा लेने और चीड़ डालने के लिये अपनी ओर से

उतरते दिखाई पड़े। वह डर गया। वह कूदा, तो सब ओर से सब कुत्ते कूदे। जब वह भौंकने लगा, तो उसने सब कुत्तों को भौंकते और अपनी तरफ मुंह पसारते देखा। चारों दिवालों से उसकी ध्वनि की प्रतिध्वनि उठने लगी। वह सहम गया। वह इधर उधर कूदने और दौड़ने लगा। इस तरह बेचारा कुत्ता थक कर वहीं ढेर होगया।

ठीक इसी प्रकार वेदान्त तुम्हें बताता है कि यह संसार शीशमहल के समान है, और ये सब शरीर विभिन्न दर्पणों के तुल्य हैं, और तुम्हारी सच्ची आत्मा या निज स्वरूप का सब और ठीक वैसे ही प्रतिबिम्ब पड़ता है जैसे कि कुत्ता अपना प्रतिबिम्ब चारों दिवालों में देख रहा था। इसी तरह एक अनन्त आत्मा, एक अनंत ईश, एक अनन्त शक्ति विभिन्न दर्पणों में अपना प्रतिबिम्ब डालती है। एक अनन्त राम ही इन सब शरीरों द्वारा प्रतिबिम्बित हो रहा है। मूर्ख लोग कुत्तों की तरह इस संसार में आते और कहते हैं, "वह मनुष्य मुझे खा लेगा, अमुक आदमी मेरे टुकड़े टुकड़े कर डालेगा, मुझे मिटा देगा"। ओह इस संसार में ईर्ष्या और भय कितना अधिक है। इस ईर्ष्या और भय का क्या कारण है? कुत्ते की अज्ञानता; अथवा कुत्ते की सी अज्ञानता इस संसार के यावत द्वेष और भय का कारण है। कृपया, पटरे उलट दीजिये। इस संसार में दर्पण वा शीशमहल के मालिक की तरह आइये। इस संसार में म—रा की तरह नहीं, रा—म* होकर अथवा हरि (बन्दर) की तरह नहीं हरि (विष्णु) की तरह आइये;

* मूल व्याख्यान में अँग्रेजी के 'डॉग' Dog और 'गॉड' God शब्दों का व्यवहार किया गया है। डी॰ ओ॰ जी = डॉग माने कुत्ता और इसके उलटे जी॰ ओ॰ डी॰ = गॉड के माने ईश्वर हैं।

और आप शीशमहल के मालिक होंगे, आप सम्पूर्ण संसार के स्वामी होंगे। आप जब अपने प्रतिद्वंदियों, भाइयों और शत्रुओं को आगे बढ़ते देखेंगे, आपको हर्ष होगा। कहीं भी किसी प्रकार का गौरव देखकर आपको प्रसन्नता होगी। आप इस संसार को स्वर्ग बना देंगे।

अब हम मनुष्य पर आते हैं। सान्त बीज में आप अनन्त देख चुके। वह उद्भिज वर्ग का उदाहरण था। जन्तु में भी आपको सान्त में अनन्त दिखाया जा चुका। यह प्राणि-वर्ग से उदाहरण था। आप शीशे के मामले में भी सान्त में अनन्त देख चुके। यह उदाहरण धातुवर्ग से लिया गया था। अब हम मनुष्य पर आते हैं।

जैसे कि मूल बीज ने मिटकर हजारों बीजों की उत्पत्ति की, किन्तु वास्तव में असली बीज न बढ़ा और न घटा था, बल्कि वैसे का वैसा ही रहा था ; और जिस प्रकार मूल जन्तु बाह्य रूप से मर कर हजारों जन्तुओं को पैदा करता है, यद्यपि असली जन्तु ज्यों का त्यों बना रहता है ; और जिस प्रकार शीशा, टूट जाने से दर्पण टूट जाता है, किन्तु वास्तविक बच्चा छिन्न भिन्न नहीं होता ; ठीक उसी प्रकार जब मनुष्य मर जाता है, उसके पुत्र, दो या अधिक, कभी कभी दर्जनों उसका स्थान ग्रहण करते हैं। कुछ अंग्रेजों, अर्थात् हिंदुस्तान के आंग्ल-भारतियों के कोड़ियों बच्चे होते हैं। जन्मदाताओं की मृत्यु हो जाने पर दर्जनों और कोड़ियों उनके स्थान पर आ जाते हैं। फिर इनकी भी मरने की बारी आती है और ये चौगुनी सन्तति अपने पीछे छोड़ जाते हैं। वे भी मर कर और भी बडी संख्या अपने पीछे छोड़ जाते हैं। अब फिर वही बात है। जैसे कि मूल जन्तु नष्ट होकर अपने स्थान में दो छोड़ गया था, और इन दो से चार हो गये थे, और चार से आठ हो गये थे, मूल बीज मिट गया था और उससे यथा समय हजारों बीज हो गये थे; ठीक वैसे ही नर और नारी के भी एक जोड़े से कोड़ियों,

नहीं हजारों, लाखों उसी प्रकार के जोड़े हो जाते हैं। जोड़े का गुणन होता ही जाता है। सविस्तर वर्णन के लिये समय नहीं है। एक व्याख्यान में ढांचा मात्र दिया जा सकता है।

वेदान्त बताता है कि ठीक वही हाल आपका भी है, जो बीज, जन्तु, या शीशे का था। नर और नारी का प्रारम्भिक जोड़ा मर गया। उससे, अर्थात् ईसाइयों की बाइबिल के आदम और ईव से संसार के कोटानुकोट वासियों का जन्म हो गया।

यहाँ पुन: वेदान्त आपसे कहता है कि यह देखने मात्र का गुणन, यह देखने मात्र की बाढ़ वास्तविक वा असली मनुष्य में, जो तुम हो, किसी प्रकार की वृद्धि की द्योतक नहीं है। वास्तविक मनुष्य (संख्या में बढ़ता नहीं है। तुम्हारे अंतर्गत वास्तविक मनुष्य अनन्त स्वरूप है। आप कह सकते हैं कि मनुष्य एक अनन्त व्यक्ति है। सब मनुष्यों को मर जाने दीजिये, कोई सा भी एक जोड़ा बच रहे। इस एक जोड़े से हमें यथा समय कोड़ियों नर-नारी मिल सकते हैं। आरम्भिक दम्पती में जो अनन्त सामर्थ्य, अनन्त शक्ति, और अनन्त योग्यता छिपी हुई या गुप्त थीं, ये आज भी हर जोड़े में बेघटी, अविकल पाई जाती हैं। यह अनन्तता तुम हो। यह अनन्त सामर्थ्य, और अनन्त शक्ति तुम हो, और यह शक्ति सकल शरीरों में वही है। ये शरीर दर्पण की तरह भले ही बढ़ जाँय, परन्तु मनुष्य अर्थात् वास्तविक अनन्तता एक है। तुमा इन शरीरों को चाहे बहुत कुछ मानो, तुम इन्हें चाहे जैस समझो, किन्तु तुम ये (शरीर) नहीं हो। आप अनन्त शक्ति हैं, जो केवल एक अपरिछिन्न है। आप कल जो कुछ थे, वही आज भी हैं, और सदा रहेंगे। एक सामान्य उदाहरण से बात अधिक साफ हो जायगी।

महाशय, आप कौन हैं ? मैं अमुक श्रीमान् हूँ । अस्तु, क्या आप मनुष्य नहीं हैं ? हां, अवश्य मनुष्य हूँ । आप कौन हैं ? मैं अमुक श्रीमती हूँ । क्या आप नारी नहीं हैं ? अवश्य नारी हूँ । किसी से भी पूछ देखिये, वह अपने को मनुष्य कहेगा किन्तु किसी अज्ञानी मनुष्य से प्रश्न कीजिये, वह आप से इतना कदापि नहीं कहेगा कि, मैं मनुष्य हूँ । वह यह भी कहेगा कि, मैं अमुक महाशय हूँ, मैं अमुकी महाशया हूँ । किन्तु, मनुष्य तो आप भी हैं । तब वह शायद अपना मनुष्य होना मंजूर कर लें ।

अब हमारा सवाल है, आपने क्या कभी कोई शुद्ध, अविशिष्ट वा अनिर्दिष्ट मनुष्य देखा है ? कभी आपने ऐसा कोई देखा है ? जहाँ हमें संयोग पड़ता है, अमुक श्रीमान या अमुकी श्रीमती, प्रकट हो जाती है, कोई महाशया या कोई महाशय निकल आते हैं । किन्तु वास्तविक मनुष्य अर्थात् कोरा वा शुद्ध मनुष्य आप कहीं नहीं पा सकते । तथापि हम जानते हैं कि वह शुद्ध मनुष्य सब वस्तुओं में विशेष है । वह जाति, अर्थात् कोरा मनुष्य, अपने रामपन और मोहनपन से रहित, अथवा अपने महाशयपन या महाशयपन से अतीत मनुष्य मिलना आप को दुर्घट है। इस प्रकार के नाम वा उपाधि आदि से रहित विशुद्ध मनुष्य हम कहीं नहीं पा सकते, यद्यपि यह मनुष्य इन सब शरीरों में वर्तमान है । अमुक महाशय को अपने सामने लाइये । उसका मनुष्य-अंश अलग कर लीजिये । मनुष्य अर्थात् वास्तविक मनुष्य घटा दीजिये, फिर क्या बच रहेगा ? कुछ नहीं । सब गया, सब गायब । 'महाशय' निकाल डालिये, सम्पूर्ण महाशय-पन तथा दूसरी बातें निकाल डालिये, हमारे लिये कुछ नहीं रह जाता, किन्तु वास्तविक मनुष्य अब भी वहाँ है । राम

वास्तविक मनुष्य से मूलभूत शक्ति का अर्थात् आपके भीतर की अनन्तता का अर्थ लेता है। तत्त्व-विचारक बर्कले के शब्दों के जाल में न भूलिये। पूरी परीक्षा और विवेचना कीजिये। आप देखेंगे कि भीतरी अनन्तता वास्तव में ऐसी कोई वस्तु है, जो देखी, सुनी और चखी नहीं जा सकती। फिर भी जो कुछ आप देखते हैं, सब का मूल (सोता) यही है, यही अखिल दृष्टि का कारण है, यही अखिल ध्वनि का कारण है, यही उन सब चीजों का सारभूत है, जो आप चखते हैं। यही वास्तविक सत्ता है, यही आत्मदेव है, जो कुछ आप जानते, देखते, सुनते या छूते हैं। सब में यही एक शक्ति है। यह सर्वत्र मौजूदा होते हुए भी अकथनीय है। इस प्रकार हमारी समझ में आता है कि सान्त के भीतर का अनन्त देखा, सुना, समझा, और बिचारा नहीं जा सकता है। और फिर भी आप जो कुछ देखते हैं, इसी के द्वारा जो कुछ सुनते हैं, इसी के द्वारा; और जो कुछ सूँघते हैं, इसी के द्वारा। यह वर्णनातीत होते हुए भी मूलभूत है, और समस्त वर्णित पदार्थों का सारांश है।

अन्त में राम आप से चाहता है कि आप अपने ऊपर केवल एक कृपा करें। सब छोड़ कर मनुष्य बनिये। ये सब शरीर ओस के बूदों के समान हैं, और असली मनुष्य सूर्य की किरण के समान है, जो ओस के मोतियों वा दानों में होकर गुजरती और उन सब को डोरे में पिरो देती है। ये सब शरीर माला के मनकों के तुल्य हैं और असली मनुष्य उन सब में होकर निकलने वाले डोरे के समान हैं। एक क्षण के लिये यदि आप शान्त बैठ कर ऐसा बिचारें कि

आप विश्व-मानव हैं, आप अनन्त शक्ति हैं, तो आप देखेंगे कि आप वास्तव में वही हैं। मनुष्य होते हुए भी मैं सब कुछ हूँ; वह अनिश्चित मनुष्य या मनुष्य वर्ग होता हुआ भी मैं सब कुछ हूँ; तुम सब एक हो, वास्तव में तुम सब एक हो। इस श्रीमान-पन वा श्रीमतीपन से ऊपर उठिये। इससे ऊपर उठते ही आपकी समस्त से एकता हो जाती है। कैसी महान धारणा है! आप समस्त से एक हो जाते हैं, तब आपकी अखिल विश्व से एकता हो जाती है। एक उपनिषद् के एक अंश का यह उल्था है, किन्तु कुछ रूपान्तर से है।

"I am the Unseen Spirit which informs
All subtle essnce ! I flame in fire.
I shine in sun and moon, planets and stars.
I blow with the winds, roll with the waves !
I am the man and woman. youth and maid !
The babe new born the withered ancient. propped
Upon his staff ! I am whatever is—
The black bee and the tiger and the fish-
The green birds with red eyes, the tree, the grass;
The cloud that hath that lightning in its womb,
The season and the seas ! In Me they are,
In Me begin and end."

(Upanishad, Sir Edwin Arnold's translation.)

मैं ब्रह्म अगोचर निर्विकार ;
सब सूक्ष्मतत्त्व का परम सार।
पावक में ज्वाला मम विकाश ;
रवि शशि ग्रहगण में मम प्रकाश ॥ १० ॥

मैं बहता हूँ नित पवन-संग ;
लहराता हूँ सह जल-तरंग।
मैं नर हूँ, पुनि मैं सुभग नारि ;
मैं बालक हूँ, मैं ही कुमारि ॥ २ ॥
मैं ही हूँ पुनि नवजात बाल ;
मरणोन्मुख बूढ़ा अति बिहाल।
मैं श्याम मक्षिका, सिंह काल ;
मैं हरित कीर दृग लाल लाल ॥ ३ ॥
मैं ही हूँ जल में जलज मीन ;
मैं ही तृण, मैं ही तरु नवीन।
चंचल चपला घन-घटा बीच ;
मेरी ही छबि कवि रहे खींच ॥ ४ ॥
मैं ही सब ऋतु, मैं ही समुद्र ;
मुझ में ही है सब बृहत क्षुद्र।
मुझ में ये दृश्यादृश्यमान ;
करते सु - आदिमध्यावसान ॥ ५ ॥

अनन्त तुम हो; वह अनन्तता तुम हो; और वह अनन्तता होने के कारण तुमने मानो इन कल्पित, मिथ्या और मायामय शरीरों की सृष्टि की है। तुमने अपने लिये शीशमहल की भाँति यह संसार रचा है। तुम उसी एक अनन्त वा विश्व-व्यापी ईश्वर का ध्यान रखो, जो वास्तव में तुम हो और जो इस जग में वास्तविक रूप से व्याप्त है।

कारण शरीर पर आत्मसूर्य

—:०:—

(ता० १२ जनवरी १९०३ को अमेरिका के सेन फ्रांसिस्को के गोल्डन गेट हाल में दिया हुआ व्याख्यान।)

—:०:—

महिलाओं और भद्रपुरुषों के रूप में नित्य स्वरूप !

आज के व्याख्यान का विषय अनित्य में नित्य है। प्रारम्भ करने से पहले कुछ शब्द उस प्रश्न के उत्तर में बोले जायँगे, जो राम से बारंबार किया गया है:—"जिस रंग के कपड़े आप पहनते हैं उसकी विशेषता क्या है ? बौद्ध पीले, और वेदान्ती साधु अर्थात् स्वामी गेरुए रंग के कपड़े क्यों पहनते हैं ?"

आप जानते हैं, हरेक धर्म के तीन अंग होते हैं। प्रत्येक धर्म का अपना-अपना तत्त्व-शास्त्र, पुराणशास्त्र, और कर्मकाण्ड है। दर्शनशास्त्र के बिना कोई धर्म टिक नहीं सकता। विद्वानों, बुद्धिमानों और युक्तिशील श्रेणी के लोगों पर प्रभाव डालने के लिये धर्म में दर्शन-शास्त्र की जरूरत पड़ती है; रसिक चितवृत्तियों अथवा जोशीले स्वभाव के लोगों का मन मोहने के लिये पुराण की, और जन साधारण को अपनी ओर खींचने के लिये कर्मकाण्ड की उसमें आवश्यकता पड़ती है।

वस्त्रों के रंग का सम्बन्ध वेदान्त धर्म के कर्मकाण्ड-विभाग से है ईसाई 'क्राँस' अर्थात् सूली के चिन्ह को क्यों धारण करते हैं ! यह कर्मकाण्ड है। ईसाई अपने गिर्जाघरों की चोटियों पर 'क्राँस' क्यों लगाते हैं ? यह भी कर्मकाण्ड है। रोमन कैथोलिक (सम्प्रदाय के)

ईसाइयों में कर्मकाण्ड की अधिकता है। प्रोटेस्टैंट (दूसरी ईसाई-सम्प्रदाय) में कर्मकाण्ड की न्यूनता है, किन्तु कुछ न कुछ है अवश्य। इसके बिना उनका भी काम नहीं चलता। इसी प्रकार ये रंग वेदान्त धर्म का कर्मकाण्ड है। हिन्दू की दृष्टि में लाल और गेरुए रंगों का वही अर्थ है जो ईसाई के लिये 'क्रॉस' का है। सूली (क्रॉस) क्या सूचित करती है? वह ईसा की मृत्यु की, ईसा के प्रेम की यादगार है। ईसा ने जनता के लिये अपने शरीर को सूली पर चढ़ने दिया। ईसाइयों के सूली-चिन्ह पहनने का यह अभिप्राय है। यदि आप किसी हिन्दू से सूली का अर्थ पूछें तो वह कुछ और ही बतावेगा। वह कहेगा, ईसा का उपदेश है सूली लो, अपनी सूली लो और मेरा अनुसरण करो। 'मेरी सूली लो' यह वह नहीं कहता। बाइबिल में (बाइबिल के नये संस्करण में) सेंट पाल या ईसा आप से ईसा की सूली उठाने को नहीं कहते, किन्तु वे कहते हैं अपनी सूली लो। ठीक यही शब्द वहाँ है, अपनी सूली लो। इनका अर्थ है, अपने शरीर को सूली पर चढ़ाओ, अपनी विषयासक्ति को सूली पर चढ़ाओ, अपने परिच्छिन्नात्मा को सूली पर चढ़ाओ, अपने अहंकार की सूली पर चढ़ाओ। यह उसका अर्थ है। अतएव सूली अपने स्वार्थों को, अपने तुच्छ अहंकार को, अपने तुच्छ अहंकारमय, स्वार्थमय परिच्छिन्नात्मा को सूली देने का चिन्ह होना चाहिये। सूली का अर्थात् सूली-चिन्ह पहनने का यह अर्थ है। इसके अर्थ आप चाहे इस प्रकार लें चाहे और प्रकार, यह आप की इच्छा पर निर्भर है। किन्तु वेदान्त सदा आपसे सूली को इसी अर्थ में लेने की प्रार्थना करता है। और इसी अर्थ में एक बौद्ध पीत वस्त्र पहनता है।

पीला रंग, कम से कम भारत में, मुर्दे का रङ्ग है। मृतक शरीर का पीला रङ्ग होता है। पीले वस्त्रों या पीली पोशाक से सूचित होता है

कि, उनको धारण करनेवाला मनुष्य अपने शरीर को सूली पर चढ़ा चुका है, अपने रक्त-मांस के शरीर को निरानिर तुच्छ समझ चुका है, विषयासक्ति से ऊपर उठ चुका है, सब स्वार्थमयपूर्ण हेतुओं से परे है ; ठीक वैसे ही जैसे कि रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय के ईसाई जब किसी को साधु बनाते हैं तब उसे कौफिन या अरथी में रखते हैं और उसके सिरहाने खड़े होकर 'जोब' (Job)* वाला अध्याय पढ़ते हैं। उन गीतों, भजनों और उपदेशों को वे उसके निकट पढ़ते हैं, जो साधारणत: मुर्दे के पास पढ़े जाते हैं। और अरथी में रक्खे हुए मनुष्य को विश्वास और निश्चय कराया जाता है कि वह मुर्दा है; अर्थात् समस्त प्रलोभनों, सम्पूर्ण विषयासक्तियों, और समग्र सांसारिक इच्छाओं के लिये वह मुर्दा है। बौद्धों को पीले कपड़े पहनने पड़ते हैं, जिसका अर्थ है कि उस मनुष्य को सांसारिक आकांक्षाओं से, स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों और मन्तव्यों से अब कोई मतलब नहीं रह गया, मानों संसार के लिये वह मुर्दा है। वेदान्तियों के गेरुये रङ्ग का अभिप्राय है अग्नि का रङ्ग। यह रङ्ग (वक्ता के कपड़ों के रङ्ग से अभिप्राय है) ठीक-ठीक आग के रङ्ग का सा रङ्ग नहीं है, किन्तु आग से इसकी अपेक्षा अधिक मिलता हुआ दूसरा रंग अमेरिका में नहीं मिल सका। हमारे भारत में एक रङ्ग है जो ठीक अग्नि के रङ्ग का है। एक भारतीय साधु कहीं पर बैठा हो, तो दूर से देखकर आप नहीं जान सकते कि मनुष्य है या अंगारों का ढेर। यह रङ्ग अग्नि के सदृश है, इसका अर्थ यह है कि मनुष्य ने अपने शरीर का दाह कर दिया है। आप जानते हैं कि हमारे भारत में मृतक शरीर गाड़ा नहीं जाता, हम उसे भस्माभूत करते अर्थात् जलाते हैं। इस प्रकार यह लाल रङ्ग स्पष्ट सूचित करता है कि इन कपड़ों को पहननेवाले मनुष्य ने अपने शरीर का हवन कर दिया है,

---

*बाइबिल का एक भाग।

अपने शरीर को सत्य की वेदी पर चढ़ा दिया है, सब सांसारिक इच्छायें जला दीं, जला दीं, जला दीं, हैं। सब सांसारिक इच्छायें, सब सांसारिक आकांक्षायें, सब सांसारिक कामनायें और लालसायें अग्नि देव के हवाले कर दी गई हैं।

सूली का भी रङ्ग लाल है। ईसा का रक्त भी लाल है। ईसाइयों को भी किसी लाल चीज की आवश्यकता पड़ती है। यह भी लाल है, और रक्त तथा अग्नि होने के दोहरे अर्थ रखता है। किन्तु यह एक और अभिप्राय का भी सूचक है। पीले रङ्ग से भी शरीर की मृत्यु अर्थात् विषयासक्ति की मृत्यु प्रकट हो सकती थी, किन्तु वे (हिन्दू साधु) पीले वस्त्र नहीं पहनते, वे अग्नि के रङ्ग के लाल कपड़े पहनते हैं। इसका भाव यह है कि, एक दृष्टि से तो यह मरण है और दूसरी दृष्टि से जीवन। आप जानते हैं, अग्नि में जीवन होता है, अग्नि जीवन का पालन करती है, अग्नि में तेज होता है, शक्ति होती है। लाल वस्त्र जतलाते हैं कि समस्त तुच्छ कामनायें, समग्र स्वार्थपूर्ण प्रवृत्तियें और क्षुद्र आकांक्षायें अग्नि के हवाले कर दी गईं, अर्थात् मार दी गईं। किन्तु दूसरी दृष्टि से उन्हीं के द्वारा जीवन ज्वाला, तेज और शक्ति प्रकट हो आते हैं। लाल पोशाक दोहरा अर्थं रखती है। वह विषयासक्ति की तो मृत्यु और आत्मिक जीवन का अर्थ रखती है। भयभीत मत हो, भयभीत न हो। वेदान्त जल-संस्कार (वैपटिज्म, ईसाई धर्म का एक संस्कार) के बदले अग्नि-संस्कार की शिक्षा देता है। वह अग्नि, अग्नि-ज्वाला के संस्कार का शक्ति और तेज के संस्कार का उपदेश देता है। ओह ! भय न करो कि यह अग्नि है और हमें भस्म कर देगी। तुम भी बाइबिल में पढ़ते हो, "जो अपना जीवन बचाना चाहे वह जीवन खोवे"। "He who would save his life must lose it." इस तुच्छ जीवन को खोकर तुम असली

जीवन की रक्षा कर सकते हो, यही सिद्धान्त है। अरे! इस संसार के लोग अपने जीवन का कैसा सर्वनाश करते हैं। वे अपने सांसारिक जीवन को कैद की जिन्दगी, मृत्यु की जिन्दगी, अर्थात् नरक की जिन्दगी बना लेते हैं। राम को आप क्षमा करें, यह सत्य है। उनके हृदयों पर, उनकी छातियों पर चिन्ता और शोक का विराट हिमालय, चिन्ता और शोक का विराट पहाड़ रक्खा हुआ है। हिमालय हमें न कहना चाहिये, हिमालय तो साक्षात् शक्ति और विभूति है। हम शोक और चिन्ता का महाशक्तिशाली पहाड़ कहेंगे। वे अश्रु और हास्य के बीच में घड़ी के पैंडूलम अर्थात् लटकन की तरह सदा झूला करते हैं, कभी किसी की टेढ़ी नजर और धमकी से हताश होते हैं, कभी किसी की कृपा और आशाजनक वचनों से प्रसन्न। अपनी कल्पना से वे सदा अपने इर्दगिर्द कारागार, अंधकूप और नरक की सृष्टि उत्पन्न किया करते हैं।

वेदांत चाहता है कि आप इस तुच्छ प्रकृति, इस मूर्खता से पीछा छुड़ा लें। इस अज्ञान को, इस परिच्छिन्न अहंकार को, इस तुच्छ स्वार्थपूर्ण प्रकृति को, जो आप के शरीर को नरक बनाये हुए है, जलादो और ज्ञान की अग्नि को भीतर आने दो। अग्नि को हिन्दू सदज्ञान का स्थानापन्न बनाते हैं। ज्ञान की अग्नि भीतर आने दो, और यह सब भूसी तथा कड़ा करकट जल जाने दो; सिर से पैर तक अग्निरूप, स्वर्गीय अग्निरूप नखशिख दहकते हुए तुम निकल आओ, यही इस रंग का अर्थ है।

किसी ने राम से पूछा था, "तुम ध्यान क्यों खींचते हो?" राम ने उसे कहा "भाई! तुम्हीं समझ कर बताओ कि इन कपड़ों में क्या दोष है?" उसने कहा, "मैं तो कोई दोष या हानि नहीं पाता, किन्तु दूसरे लोग दोष निकालते हैं।" परन्तु दूसरों की अज्ञानता के तुम

जिम्मेदार नहीं हो। अपनी बुद्धि और दिमाग से सावधान हो। यदि आप स्वयं कोई दोष निकाल सकते हैं तो इन कपड़ों में निकालिये। यदि दूसरे दोष निकालते हैं तो आप उनके जिम्मेदार नहीं हैं।

सब से श्रेष्ठ साधु, श्रेष्ठतम भारतीय साधु, इस संसार में सबसे बड़ा स्वामी, सूर्य अर्थात् उदय होता हुआ सूर्य है। निकलता हुआ सूर्य नित्य आप को लाल पोशाक में, वेदाँती साधु की पोशाक में दर्शन देता है। आज के व्याख्यान में, यह सूर्य अनित्य शरीरों की अपेक्षा नित्य स्वरूप को आप के सम्मुख दर्शायेगा। सूर्य, स्वामी, साधु, लाल वस्त्रधारी सूर्य को हम सच्ची आत्मा, वास्तविक स्वरूप, जो इस सूर्य की अपेक्षा बेबदल है, जो नित्य है, जो आजकल और हमेशा एक-रस है, उसका एक चिन्ह मान लेते हैं। हम अब अनित्य अर्थात् बदलने वाली वस्तुओं की चर्चा करेंगे, जो मनुष्य में अनित्य शरीरों के स्थान पर हैं। मनुष्य में बदलने वाले अर्थात् अनित्य पदार्थ भी हैं, और उसी मनुष्य में निर्विकार, निर्विकल्प, नित्य वास्तविक आत्मा भी है। वास्तविक आत्मा सूर्य के समान है। और परिवर्तनशील पदार्थ तीन शरीर हैं; जो घन रूप; लघु रूप और बीज रूप हैं। राम इन शरीरों को ये नाम देता है। संस्कृत में इन्हें स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर कहते हैं। और राम उनका उल्था घन (gross) शरीर, सूक्षम (subtle) शरीर, बीज (seed) शरीर करता है। ये तीनों शरीर अर्थात् कारण, सूक्ष्म और स्थूल शरीर परिवर्तनशील पदार्थ हैं; ये आत्म नहीं, किन्तु अनात्म हैं। ये परिवर्तनशील और अस्थिर हैं। ये आप स्वयं नहीं हो। आप नित्यात्मा हो, निर्विकार हो। यही दिखाना है।

आपको तीनो शरीरों और वास्तविक आत्मा की स्पष्ट धारणा कराने के लिये हम एक उदाहरण का सहारा लेते हैं। कृपा पूर्वक

खूब ध्यान दीजियेगा। आज के व्याख्यान में युक्ति की बातें न बघारी जाँयगी, बहुत तर्क-वितर्क न होगा। आज मनुष्य का मसला (सिद्धान्त), जैसा कि हिन्दुओं ने सिद्ध किया है, आप को साफ करके बताया जायगा। उसकी स्पष्ट व्याख्या की जायगी ताकि आप तुरन्त समझ सकें। पीछे यदि समय मिलेगा तो हम तत्त्व शास्त्र में प्रवेश करेंगे और प्रश्न के प्रत्येक पहलू को दलीलों से सिद्ध करेंगे। आप जानते हैं कि किसी विषय पर न्याय-शास्त्र का प्रयोग करने के पूर्व हमें पहले समझ लेना चाहिये कि सिद्धांत क्या है। इस लिये आज सिद्धांत का अभिप्राय स्पष्ट किया जायगा। और आप देखेंगे कि इस व्याख्या में भी, अथवा आवरण रूपी मेघों का दूर होना और सिद्धांत का समझना ही स्वयं प्रमाण हो जायगा। जैसा कि पोप (एक अंग्रेज कवि) ने लिखा है।

"Virtue is a fairy of such a beauteous mien,
As to be loved needs only to be seen."

"नेकी एक ऐसी रूपवती सुंदरी है कि उसे प्यार करने के लिये केवल देख लेने भर की आवश्यकता है।"

इसी प्रकार सत्य में भी ऐसी भव्य सुंदरता है कि आपके हृदयों में उसके पैठ जाने के लिये केवल उसे साफ साफ देख लेने की जरूरत है। सूर्य के अस्तित्व के लिये किसी दूसरे प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। सूर्य को देखना ही सूर्य को प्रमाणित करना है। हर एक चीज जो कुछ भी हो, किसी बाहरी प्रकाश में दिखाई देती है, किन्तु प्रकाश को किसी दूसरे प्रकाश की आवश्यकता नहीं होती कि उसकी सहायता से वह देखा जा सके। इस लिये आज रात को किसी युक्ति और प्रमाण के बिना ही केवल सिद्धांत आपके सामने रख दिया जायगा। अब हम उदाहरण पर आते हैं।

कृपया आप राम के साथ हिमालय की हिमशिलाओं (glaciers) को चलिये। कैसा जगमग दृश्य हमें दिखाई पड़ता है। हीरे का सा पहाड़, सब सफेद, अद्भुत, झलझलाता हुआ, श्वेत हिमशिलाओं का समुद्र, अति चमकदार, अति सुन्दर, प्रभाशाली, उत्साह फूंकनेवाला है। वहाँ न कोई बनस्पति है, न पशु, न नर, न नारी। इन बर्फीली चट्टानों पर जीवन का एक स्रोत मात्र सूर्य अर्थात् इन मनोहर दृश्यों पर चमकने वाला प्रभामण्डल रूपी सूर्य दिखाई देता है। अहा, कैसा सुहावना दृश्य है! कभी कभी सूर्य का प्रकाश बादलों से छनकर भूमि पर पड़ता है, और सारी दृष्टिगत भूमि को अग्निवर्ण से दीप्त कर देता है, सम्पूर्ण दृश्य को स्वामी की पोशाक पहना देता है, सारी रंगभूमि को साधु अर्थात् भारतीय साधु बना देता है। कुछ ही देर बाद सब दृश्य पोला इत्यादि हो जाता है। किन्तु है इस रंगशाला में केवल एक वस्तु, दूसरी कोई वस्तु नहीं। वह एक वस्तु सूर्य है।

आप समझते हैं कि इन हिम-शिलाओं में हिंदुस्थान की बड़ी बड़ी नदियाँ छिपी हुई अर्थात् लुकी हुई हैं। भारत की सब बड़ी बड़ी नदियाँ इन्हीं हिम-शिलाओं से निकलती और बहती हैं। इन हिम-शिलाओं में नदी का मूल स्थान या कारण शरीर है। अब आप कृपापूर्वक राम के साथ साथ उतर कर नदी-जीवन की दूसरी अवस्था पर चले आइये।

यहाँ हम दूसरा ही रूप देखते हैं, दूसरे ही प्रकार के दृश्यों और भूभागों (landscapes) पर आते हैं। अब भी हम पहाड़ में ही हैं, किंतु बरफ से ढकी हुई चोटियों पर नहीं, कुछ नीचे पर हैं। यहाँ मीलों तक, दर्जनों और कोड़ियों मीलों तक सब कहीं सुंदर गुलाब लगे हुये हैं और पवन गुलाब की रुचिकर मधुर सुगन्ध से पूरित है। यहाँ सुन्दर बुलबुलें और दूसरी चिड़ियाँ गा रही हैं, वर्ष भर नित्य

प्रेमपत्र लिखा करती हैं अथवा प्रेम प्रलाप करती हैं। यहाँ मनोहर गायक पक्षी वा अन्य पक्षी विशेष अपनी मीठी तानों से पवन को परिपूर्ण करते हैं, और यहाँ हम शानदार, सुन्दर, मनोहर वृक्षों के बीच में अत्यन्त चित्ताकर्षक गंगा या किसी दूसरी नदी को अपने घूमते फिरते, टेढ़े मेढ़े मार्ग से जाते, खेलते, पहाड़ों में किलोल करते हुए देखते हैं। आहा! कैसे सुंदर नाले और छोटी-छोटी नदियाँ यहाँ हमें मिलती हैं। इन सुंदर नालों में तट पर लगे हुए वृक्षों की परछाहीं पड़ती है, और ये छोटी नदियाँ या नाले बड़े सुहावने ढंग से खूब मौज से खेलते हुए कभी इधर झुकते हैं और कभी उधर। बार-बार चक्कर काटते, कभी इधर मुड़ते और कभी उधर, तथा बराबर गाते हुए, ये नदियाँ और नाले बह रहे हैं।

यह क्या है? नदी-जीवन की यह दूसरी दशा है। यहाँ नदी अपने सूक्ष्म शरीर में है। यह नाले या क्षुद्र नदी का रूप नदी का सूक्ष्म शरीर है। यह सूक्ष्म शरीर नदी के कारण शरीर से निकलता है। यह नदी के कारण शरीर से आया है। आप जानते हैं कि नदी के कारण शरीर पर सूर्य चमक रहा था, और नदी के कारण शरीर पर सूर्य के ताप और प्रकाश की क्रिया से नदी का सूक्ष्म-शरीर निकल आया। यह सूक्ष्म-शरीर है। यह अति चञ्चल, डाँवाडोल, घुमावदार, बांका-तिरछा है। कहीं यह कभी नीचे फांदता है और जोश तथा जल्दी में छलांगे भर रहा है, और कहीं यह शांत भाव से झील बनकर स्थिरता धारण करता है। यह बहुत ही डाँवाडोल, चञ्चल और परिवर्तनशील है।

आओ, थोडा उतर कर समभूमि में पहुँचे। यहाँ मैदान में दूसरे ही दृश्यों से हमारा सामना है। वही जल, वही नदी हमने बर्फ की टोपी पहने हिमशिलाओं में कारण रूप में मौजूद देखी थी, और नीचे पहाड़ों

पर अपने सूक्ष्म आकार में उसने अत्यन्त विलक्षण और कविता रूप धारण किया। वही जल, वही नदी, अब मैदान में मटियारी नदी हो जाती है। मैदान में वही नदी, वही गंगा बड़ी शक्तिशालिनी सरिता हो जाती है। वह बहुत बदल गई। उसने नये वस्त्र अर्थात् नया रंग धारण किया है। उसकी असली स्वच्छता और निर्मलता नहीं रह गई। वह मैली और गदली हो गई, तथा अपना रंग भी बदल दिया। मटियारी वह हो गई। और साथ ही साथ उसकी गति भी बदल गई। अब वह मंद अर्थात् अति मंद हो गई। और दूसरी ओर अब वह अति उपयोगी हो गई है। इस विराट नदी के जलतल पर अब नावें और जहाज चल रहे हैं, और व्यापार हो रहा है। लोग आकर नहाते हैं, और महान् नदी का जल अब नहरों और जल-प्रवाहों या बम्बों तथा खेत सींचने और आस-पास के देश को उपजाऊ बनाने के काम में लाया जा रहा है।

नदी–जीवन की यह तीसरी दशा नदी का स्थूल शरीर है। और नदी के जीवन का हाल क्या है? नदी की असिल प्रेरक शक्ति का क्या हाल है? नदी की असली प्रेरक शक्ति सूर्य अर्थात् जाज्वल्यमान ज्योति-मण्डल है। अब इस उदाहरण को मनुष्य पर घटाइये।

तुम्हारे तीन शरीर कहाँ हैं, और उनका एक दूसरे के साथ तथा तत्व स्वरूप से अर्थात् तुम्हारे वास्तविक स्वरूप या आत्मा से कैसा सम्बन्ध है?

अपनी गहरी नींद (सुषुप्ति) की अवस्था में जहाँ अपने से इतर प्रत्येक वस्तु से तुम बेखबर रहते हो, अर्थात् जहाँ तुम संसार के विषय में कुछ नहीं जानते, जहाँ पिता पिता नहीं हैं, माता माता नहीं हैं, घर घर नहीं है और संसार संसार नहीं है, जहाँ अज्ञानता है, जहाँ अज्ञानता के सिवाय और कुछ नहीं है, जहाँ अव्यवस्था की हालत है, मृत्यु की हालत

है, प्रलय की हालत है, जहाँ यों कह लीजिये कि पूरी शून्यता की दशा है, ऐसी गाढ़ निद्रा की अवस्था में आप वास्तव में आप क्या हैं ?

वेदान्त कहता है, वहाँ उस दशा में जिसकी जाँच आप में से अधिकांश ने कभी नहीं की है, मनुष्य का कारण शरीर है, मनुष्य के वास्तविक स्वरूप या आत्मा के नीचे मनुष्य का कारण शरीर सीधा चित लेटा हुआ है। मनुष्य-जीवन की नदी के जीवन से तुलना होने पर, हिम-शिलाओं पर चमकते हुये सूर्य की भाँति वहाँ हम शुद्ध आत्मा पाते हैं।

कृपया खूब ध्यान से सुनिये। अब एक अत्यन्त सूक्ष्म बात का वर्णन किया जायगा। किसी और दिन भी यह बात कही जा चुकी है, परन्तु अवसर चाहता है कि वह फिर दोहराई जाय।

तुम्हारी गहरी नींद अर्थात् सुषुप्ति की अवस्था में यह संसार मौजूद नहीं है, केवल स्वप्न-भूमि है। जागने पर तुम कहते हो कि, "गहरी नींद की दशा में कुछ वर्तमान नहीं था, कुछ मौजूद नहीं था, कुछ नहीं"। वेदान्त कहता हैं, सचमुच उस गहरी नींद की दशा में कुछ मौजूद नहीं है। किंतु आप जानते हैं, जैसा कि हेगेल (Hegel) ने साफ साफ दिखाया है (जर्मन दार्शनिक हेगेल से पहले ही हिन्दू ऋषिगण विचार कर सिद्ध कर गये हैं कि यह 'कुछ नहीं' भी कुछ है) यह 'कुछ नहीं' भी कारण-शरीर है। यह वस्तु-अभाव, जिसे आप अपनी जाग्रत दशा में 'कुछ नहीं' बताते हैं, कारण शरीर है; यह आपके जीवन की हिम-शिला है। जैसा कि बाइबिल में कहा गया है कि, 'कुछ नहीं' से ईवश्र ने कुछ की सृष्टि की; उसी प्रकार हिंदुओं ने दिखलाया है कि इस कारण शरीर से जिसे जागने के बाद आप 'कुछ नहीं' वर्णन करते हैं, इस कारण-शरीर से जिसे आप 'कुछ नहीं' कहते हैं, इस कारण-शरीर या 'कुछ नहीं' से समस्त संसार निकलता या पैदा होता है। यदि तत्त्व-ज्ञानी लोग

आकर कहें 'कुछ नहीं' से 'कुछ' कदापि नहीं निकल सकता, तो वेदान्त कहता है, जिसे हमने 'कुछ नहीं कहा है वह वास्तव में 'कुछ नही' नहीं है। आप उसे केवल जागने पर 'कुछ नहीं' कहते हैं। आप जानते हैं कि एक ही शब्द की हम जिस तरह चाहें व्याख्या कर सकते हैं। यह वास्तव में 'कुछ नहीं' नही है। यह कारण-शरीर है। यह हिम-शिलाओं के समान है। हाँ, अब आप कहेंगे, हम समझ गये कि उस सुषुप्ति से, जिसे हम 'कुछ नहीं' कहते हैं, कुछ का जन्म होता है, और वह देखने मात्र 'कुछ नहीं' कारण-शरीर है। किंतु अपने भीतर के सूर्य का अनुभव कीजिये, भीतरी ईश्वर का अनुभव कीजिये, आत्मा का अनुभव कीजिये, जो कारण शरीर की इस हिम-शिला से इस समस्त सृष्टि की उत्पत्ति करता है। सूर्य या ईश्वर या आत्मा का अनुभव कीजिये। आप पूछेंगे कि इसका क्या अर्थ है? कृपा करके सुनिये।

उठने पर आप कहते हैं, "ऐसी गहरी नींद सोया कि स्वप्न में कुछ भी नहीं देखा"। उस पर हम कहते हैं कृपा-पूर्वक इस कथन को कागज पर लिख लीजिये। तब वेदान्त आकर कहता है कि, यह कथन ठीक उसी मनुष्य का सा कथन है, जिसने कहा था कि घोर रात्रि में अमुक अमुक स्थान पर एक भी प्राणी मौजूद नहीं था। न्यायकर्त्ता ने उससे यह कथन कागज पर लिख देने को कहा, और उसने यही किया। हाकिम ने उससे प्रश्न किया, क्या यह कथन तुम्हारा सच है? उसने कहा, हाँ। तुम किम्बदन्ती के आधार पर यह बात कह रहे हो अथवा अपनी निजी जानकारी के आधार पर? तुमने स्वयं देखा है। उसने कहा, हाँ, मैंने स्वयं देखा है। बहुत ठीक। यदि तुमने अपनी आँखों से देखा है और यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारी बात को सत्य समझें कि वहाँ कोई मौजूद नहीं था, तो अन्ततः तुम मौके पर अवश्य उपस्थित रहे होगे, तभी तुम्हारा यह बयान सही हो सकता है। किन्तु यदि तुम स्थल पर

उपस्थित थे तो तुम्हारा यह बयान अक्षरशः सत्य नहीं है, अर्थात् सर्वथा ठीक नहीं है, क्योंकि मनुष्य होते हुए तुम मौजूद तो थे। कम से कम एक मनुष्य मौके पर मौजूद था। इस प्रकार यह, कि कोई मौजूद नहीं था, उस स्थल पर एक भी मनुष्य वर्तमान नहीं था, मिथ्या है, अर्थात् विरुद्ध बयान है। इसके सत्य होने के लिये, और तुम चाहते हो कि हम इसे सत्य समझें, इसका असत्य होना जरूरी है। इसका असत्य होना इसलिये जरूरी है कि कम से कम एक मनुष्य को स्थल पर मौजूद होना ही चाहिये।

इसी प्रकार, जागने पर जब हम बयान करते हैं कि "अरे भाई, ऐसी गहरी नींद मैंने ली कि उस स्थल पर कुछ भी मौजूद न था", तो मैं कहता हूँ, महाशय ! आप मौजूद थे। यदि आप सोये होते, यदि आपका सच्चा स्वरूप अर्थात् वास्तविक आत्मा और वास्तविक सूर्य, वास्तविक ज्योति-मंडल, वास्तविक ईश्वर सोया होता, तो स्वप्न की अव्यवस्था और शून्यता की गवाही कौन देता ? जब आप स्वप्न की अवस्था और शून्यता की गवाही दे रहे हैं, तो आप वहाँ अवश्य उपस्थित होंगे। इस प्रकार आपकी गहरी निद्रा में, वेदान्त कहता है, कि वहाँ दो वस्तुयें अवश्य दिखाई देती हैं:—(१) शून्यता, जो हिम-शिलाओं या कारण-शरीर के तुल्य है, और (२) साक्षी-ज्योति, अर्थात् सूर्य, प्रकाशमान आत्मा, प्रभापूर्ण स्वरूप या ईश्वर, जो उस सब को देख रहा और गहरी निद्रित अवस्था के उजाड़-खण्ड पर भी चमक रहा है। वहाँ पर सच्चा स्वरूप नित्य वा निर्विकार सूर्य है, और गहरी नींद की वह शून्यता कारण-शरीर है, जो परिवर्तनशील व अनित्य और चंचल है। यह परिवर्तनशील और चंचल क्यों है ? क्योंकि जब आप स्वप्नभूमि में आते हैं, जब आप स्वप्नावस्था में पड़ जाते हैं, वह शून्यता जाती रहती है, वह शून्यता नहीं बाकी रहती। यदि गहरी नींद

की वह अव्यवस्था या शून्यता आप की वास्तविक आत्मा होती, तो वह सदा ज्यों की त्यों रहती। किन्तु वह बदलती रहती है। जब आप स्वप्न-देश में आते हैं, तब बदलने की सामर्थ्य ही से सूचित होता है कि वह असली नहीं है। यह कारण शरीर वास्तविक नहीं है। आप को आश्चर्य होगा, आप कहेंगे कि हमारा यह अद्भुत संसार उस शून्यता से कैसे निकल पड़ा। किंतु यह तथ्य है। यूरोप और अमेरिका में आप लोग दूसरे ही ढंग से इन मामलों पर विचार करते रहे हैं। आप उलटी पुलटी दशा में इन बातों को ग्रहण करते आये हैं। राम पर विश्वास कीजिये, यह वह सच्चाई है, जो प्रत्येक व्यक्ति में जरूर व्यापेगी, जो इस सृष्टि के प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में देर या सबेर में जरूर प्रवेश करेगी।

यहाँ लोग पेंदी से चोटी पर अर्थात् नीचे से ऊपर चीजों को ले जाने के अभ्यासी हैं। वे चाहते हैं कि नदियां नीचे से ऊपर पहाड़ पर उलटी बहकर जायें, जो प्रकृति-नियम-विरुद्ध या अस्वाभाविक है। और इसलिये राम के अभी के कथन पर, कि "आपकी गहरी नींद की शून्यावस्था से आपके स्वप्न लोक का आविर्भाव होता है", आपको आश्चर्य होगा, आप चकित होंगे। किंतु जरा जाँच कीजिये व विचार कीजिए, क्या यह प्रकृति का क्रम नहीं है? आपकी यह पृथ्वी कहाँ से आई? आपकी यह पृथ्वी कभी बादली दशा में या कोहरे की सी दशा में थी। यह सब सृष्टि पहले ऐसी दशा में थी, जिसका कोई आकार न था, जो दशा आपकी गहरी नींद की दशा के तुल्य धुन्धली सी थी। यह आकारहीन दशा में थी, यह ऊटपटांग दशा में थी। उस ऊटपटांग दशा से धीरे धीरे उद्भिज वर्ग की, पशु वर्ग की, और मनुष्य की उत्पत्ति हुई। वेदान्त आपको बतलाता है कि, आप सम्पूर्ण प्रकृति में जो कुछ पाते हैं, जो कुछ भौतिक दृष्टि से आप सत्य पाते हैं, वही अध्यात्म दृष्टि से भी सत्य

है। यदि, कहने में, यह समस्त संसार ऊटपटांग या शून्य अवस्था से उपजता है, तो आपकी स्वप्न और जाग्रत दशायें भी उसी गहरी नींद की दशा या ऊटपटांग दशा से, अर्थात् शून्य अवस्था की दशा से हुईं। आपकी जाग्रत और स्वप्न दशायें उससे उत्पन्न हुईं। ठीक यही बात प्रत्येक मनुष्य के जीवन में पाई जाती है। मनुष्य जब बच्चा होता है तो वह शून्यता की हालत से बहुत मिलता जुलता है, मानो उस अवस्था से धीरे धीरे वह दूसरी दशाओं में आता है, जिन्हें आप उच्चतर कहते हैं, यद्यपि उच्चतर और निम्नतर सापेक्षक शब्द हैं।

समस्त विश्व में जो नियम है वही नियम हरएक मनुष्य के साधारण जीवन का भी है। सुषुप्ति-अवस्था से यह स्वप्नावस्था पैदा होती है। लोग स्वप्न-अवस्था की व्याख्या इस तरह पर करने की चेष्टा करते हैं, मानों स्वप्नावस्था जाग्रत अवस्था के सहारे है। आप को यह देखकर आश्चर्य होगा कि सिद्धांतों को वेदान्त उनके यथार्थ रूप में दर्शाता है और स्पष्ट करता है कि, सब यूरोपीय तत्व ज्ञानी अर्थात् आपके सब हेगेल (Hegels) और कैंट (Kants) स्वप्न के अद्‌भुत व्यापार को पूरी तरह नहीं समझ सके। आज इस विषय पर कुछ कहने का हमें समय नहीं है। किंतु यह विषय किसी अन्य व्याख्यान में या कोई पुस्तक द्वारा सिद्ध करके आपको दिखाया जायगा।

अब हम स्वप्न-अवस्था पर आते हैं। स्वप्न-लोक में हम मानों हिम-शिलाओं से निचले पहाड़ों पर आते हैं। आप अभी तक पर्वत पर सोये हुए हैं। यहाँ सूक्ष्म-शरीर अर्थात् स्वप्नदर्शी आत्मा अपने आपको एक विचित्र लोक में, अथवा काव्यमय प्रदेश में पाता है। आपका स्वप्नदर्शी आत्मा अभी एक पक्षी है, अभी एक राजा है, तुरन्त वह भिक्षु हो जाता है। अब वह एक ऐसा मनुष्य है, जो

हिमालय पहाड़ पर अपनी राह भूल गया है। कुछ देर बाद वह लंदन सरीखे बड़े नगर का निवासी बन जाता है। अभी वह इस नगर में है और फिर उस नगर में। कैसा परिवर्तनशील है! जिस तरह नदियाँ पहाड़ों पर परिवर्तनशील, सर्पगति और चञ्चल हैं, दम बदम इस ओर और उस ओर मुड़ती रहती हैं, वही दशा तुम्हारे स्वप्नदर्शी आत्मा की है। अपनी स्वप्न-अवस्था में आप सब बात में फुर्ती दिखाते हैं, ठीक उसी तरह जैसे नदियाँ पहाड़ पर फुरतीली होती हैं, जैसे नदी, नाले पर्वत पर अति तेज, फुरतीले, खेलाड़ी और वेगवान होते हैं। इसी तरह आपका स्वप्नदर्शी आत्मा अति खेलाड़ी और जल्दबाज है। आप कल्पना के देश में रहते हैं। वहाँ मुर्दे जी उठते हैं, और जिन्दा लोगों को आप कभी कभी मुर्दा पाते हैं। अद्‌भुत देश है! विचित्रता और काव्य का देश है! क्या यह ठीक सूक्ष्म-शरीर वाली पहाड़ पर की नदी के समान नहीं है, जहाँ वह विचित्रता और काव्य के देश में होती है? स्वप्न के अनुभव के बाद, मानों पहाड़ से निकलते हुए आप अपनी दूसरी दशा से गुजरते हुए मैदान में आतें हैं। आप जाग पड़ते हैं। अपनी जाग्रत-अवस्था में आप स्थूल-शरीर गढ़ते हैं, ठीक वैसे जैसे कि नदी को मैदान में उतरते समय स्थूल-शरीर की जरूरत पड़ती है। आप समझते हैं कि, गहरी नींद की (सुषुप्ति) अवस्था कारण-शरीर कहलाती है, और आप के स्वप्न-देश का शरीर सूक्ष्म-शरीर कहलाता है, तथा आप की जाग्रत-अवस्था का शरीर स्थूल कहलाता है। आप जानते हैं कि जब नदियाँ पहाड़ों से उतर कर मैदान में पैर रखती हैं, उनका सूक्ष्म-शरीर जैसा का तैसा बना रहता है, केवल बस एक लाल या मटियारा ओढ़ना अपने ऊपर ओढ़ लेता है। आप पहाड़ से आने वाले जल को भी जानते हैं। वह ताजा और स्वच्छ जल मट्टी, कीचड़ और मैदान की

धूल में छिपा रहता है। नदी का सूक्ष्म-शरीर जैसा कि वह पहाड़ में देखा गया था, वहाँ (मैदान में आकर) बदला नहीं। उसने केवल नये कपड़े धारण कर लिये हैं, नई पोशाक पहन ली है। इस तरह नदी जब मैदान में उतरती और नई मटियारी पोशाक पहनती है, हम कहते हैं कि, नदी अपने स्थूल शरीर में है। जब सूक्ष्म-शरीर कारण शरीर से निकला था तब ऐसा नहीं था। तब कारण-शरीर को पिघलकर सूक्ष्म-शरीर पैदा करना पड़ा था। और अब जाग्रत् दशा में सूक्ष्म-शरीर को पिघलना या बदलना नहीं पड़ता, उसे केवल नये कपड़े, नई पोशाक पहनना पड़ती है। वास्तव में यह घटना होती है।

आप की जाग्रत्-अवस्था में सूक्ष्म-शरीर (दूसरे शब्दों में मन-बुद्धि) जो स्वप्न-देश में काम कर रहा था, गायब नहीं हो जाता, वही बना रहता है। किन्तु ये भौतिक तत्त्व, भौतिक सिर तथा और सब भौतिक अंग, उस पर मानों पोशाक की तरह पहन लिये जाते हैं। और जब आप को सोना होता है, यह भौतिक स्थूल-शरीर केवल उतार दिया जाता है, मानों वह किसी खूंटी पर टाँग दिया गया, और सूक्ष्म-शरीर इससे रहित हो गया।

जिस तरह सोते समय लोग अपने कपड़े उतार डालते हैं, उसी तरह आप इसे (स्थूल-शरीर को) उतार डालते हैं, और आप के स्वप्नों में केवल सूक्ष्म-शरीर काम करता है। अच्छा, तो सूक्ष्म-शरीर क्या है? अब यह दिखाया जायगा कि वह सूक्ष्म-शरीर भी भौतिक है। सूक्ष्म और स्थूल का एक दूसरे से सम्बन्ध बताया जायगा। आप जानते हैं कि जाड़े की ऋतु में (जाड़े की ऋतु रात के समान है) नदियाँ आम तौर से अपने स्थूल-शरीर को हटा देती हैं, अपने को अपने स्थूल-शरीर से रहित कर लेती हैं और केवल अपना सूक्ष्म-शरीर अपने साथ रखती हैं, अर्थात् शीतकाल में नदियों का डील डौल घट जाता है, वे अपना

कीचड़, मट्टी और लाल, मटियारा जामा त्याग देती हैं। वे मानों नींद लेती हैं। जिस तरह नदियाँ अपना स्थूल-शरीर उतार डालती हैं और केवल सूक्ष्म-शरीर ही रखती हैं, ठीक उसी तरह प्रत्येक दिन जब आप रात को सोने लगते हैं (आप का शीत काल), आप स्थूल को उतार डालते और केवल सूक्ष्म-शरीर रख लेते हैं।

किन्तु जो सूर्य कारण-शरीर पर चमक रहा था, वही सूर्य समान भाव से नदी के सूक्ष्म शरीर पर भी चमकता है, प्रत्येक मनुष्य के सूक्ष्म-शरीर पर समान भाव से चमकता है, जब वह (मनुष्य) स्वप्न-प्रदेश में होता है। और नदी के कारण तथा सूक्ष्म-शरीरों पर चमकने वाला सूर्य उसके स्थूल शरीर पर भी उसी तरह चमकता है।

शुद्ध आत्मा या वास्तविक स्वरूप, जो गहरी नींद (सुषुप्ति) की दशा के शरीर पर चमकता देखा गया था, आपके स्वप्न-प्रदेश और आपकी जाग्रत्-दशा तथा मानों स्थूल-शरीर पर भी चमकता है। किन्तु भेद क्या है? भेद है सूर्य के प्रतिबिम्ब में। जब सूर्य नदी के कारण-शरीर व हिम-शिलाओं पर चमक रहा था, तब उनमें सूर्य की छाया-मूर्ति नहीं दिखाई देती थी। हिम-शिलाओं पर सूर्य की क्रिया बड़ी प्रचण्ड थी, किन्तु प्रतिबिम्ब या छाया-मूर्ति नहीं दिखाई देती थी। परन्तु नदी के सूक्ष्म-शरीर पर चमकते ही उसका प्रतिबिम्ब पड़ने लग गया।

जब सूर्य नदी के सूक्ष्म-शरीर पर चमकने लगा, तब सूर्य की छाया-मूर्ति दिखाई देने लगी। हिम-टोपधारी चोटियों या हिम-शिलाओं पर सूर्य की छाया-मूर्ति दिखाई देती, किन्तु नदी के सूक्ष्म-शरीर में दिखाई देती है; अर्थात् पहाड़ों में व नालों में सूर्य की छाया-मूर्ति दिखाई देती है। यह छाया-मूर्ति क्या सूचित करती है? यह सूचित करती है कि छाया-मूर्ति आपका असली स्वरूप, शुद्ध, निर्विकार और निर्विकल्प

आत्मा, असली ब्रह्म या ईश्वर है। वही ईश्वर आपकी गहरी नींद की दशा में भी आप में वर्तमान है और वही ईश्वर आपके कारण-शरीर पर चमकता है। किन्तु विचार कीजिये, गहरी नींद की दशा में किसी तरह का अहंभाव उपस्थित नहीं है; आप को कोई विचार नहीं होता कि मैं सोया हूँ, मैं बढ़ता हूँ, मैं भोजन पचाता हूँ, मैं काम करता हूँ। अतः वहाँ (गहरी नींद की दशा में) किसी प्रकार का अहंभाव नहीं है। वास्तविक आत्मा वहाँ है किन्तु वहाँ किसी प्रकार का अहङ्कार नहीं है। यह झूठा, देखने मात्र का अहङ्कार, जिसे लोग आत्मा समझते हैं, वहाँ नहीं है। स्वप्न की दशा में यह प्रकट होता है। स्वप्न-अवस्था नदी की दूसरी अवस्था अर्थात् नदी के सूक्ष्म-शरीर के समान है। उस स्वप्न की अवस्था में यह प्रकट होता है, और जाग्रत दशा में भी यह प्रकट होता है। आप जानते हैं कि आपकी जाग्रत्-अवस्था नदी की मैदानी दशा के, अर्थात् नदी के स्थूल-शरीर के तुल्य है। उसमें सूर्य साफ चमक रहा है ; वह हिम-शिलाओं पर भी स्वच्छता से चमक रहा था। किन्तु नदी में उसकी छाया-मूर्ति प्रतिबिम्बित होती है और गंदली नदी पर भी सूर्य की छाया-मूर्ति दिखाई पड़ती है। इसी तरह आप की जाग्रत्-अवस्था में भी सूर्य की छाया-मूर्ति दिखाई पड़ती है। यह अहंकार—मैं यह करता हूँ, मैं वह करता हूँ, मैं यह हूँ, वह हूँ और यह सब अहंभाव—यह स्वार्थी, देखनेमात्र आत्मा जाग्रत्-अवस्था में भी अपने को प्रकट करता है। किन्तु आप जानते हैं कि आपकी स्वप्न-अवस्था के अहंकार और आपकी जाग्रत्-अवस्था के अहंकार में अन्तर है। आपके स्वप्न-जगत् के अहंभाव, जो आपके लिए सच्ची आत्मा या ईश्वर की छाया अथवा प्रतिबिम्ब है, ठीक उसी तरह चञ्चल, परिवर्तनशील, अस्थिर, डाँवाडोल, और धुंधला है जैसे नदी में जब कि वह पहाड़ों पर होती है, सूर्य का प्रतिबिम्ब अस्थिर, चंचल और परिवर्तनशील

होता है। और आपकी जाग्रत्-अवस्था में यह अहंभाव ऐसे निश्चित और स्थायी है जैसे मन्द धारा में या मन्द नदी में, जब कि वह मैदानों में बहती है।

यहाँ पर कुछ और कहना है। लोग पूछते हैं कि स्थूल-शरीर को सूक्ष्म-शरीर का परिणाम अथवा कार्य (बाद का असर) कहने का आपको क्या हक है? लोग पूछते हैं, स्वप्न-दशा को जाग्रत-दशा के ऊपर रखने का आपको क्या अधिकार है? इस पर ध्यान दीजिये। जाग्रत्-अवस्था में आपका अनुभव किन पदार्थों का बना हुआ है? आपकी जाग्रत्-अवस्था का अनुभव देश, काल और वस्तु पर टिका हुआ है। क्या आप किसी भी द्रव्य अर्थात् इस संसार की किसी भी वस्तु का विचार उसमें देश, काल, वस्तु आदि की कल्पना डाले बिना कर सकते हैं? कदापि नहीं, कदापि नहीं। देश, काल और वस्तु के बिना आपको किसी भी चीज की धारणा नहीं हो सकती। इनके बिना किसी भी वस्तु की धारणा असम्भव है। देश, काल और वस्तु आपके संसार के ताने और बाने के समान हैं। उन पर ध्यान दीजिये, वे आपके स्वप्न-जगत् में भी हैं और जाग्रत्-अवस्था में भी हैं। आप जानते हैं, मैक्समूलर (Max Muller) ने जर्मन तत्त्ववेत्ता कैंट के "क्रीटिक आफ् प्योर रीजन" (Kant's Critique of Pure Reason) नामक पुस्तक के अपने अनुवाद की प्रस्तावना में कहा है कि कैंट भी उसी तत्त्वज्ञान की शिक्षा देता है जैसा कि वेदान्त। वे कहते हैं कि कैंट ने साफ दिखला दिया है कि देश, काल और वस्तु पहले ही से हैं, और हिंदुओं ने यह नहीं दिखाया है। राम तुमसे कहना चाहता है कि मैक्समूलर को हिन्दू धर्म-ग्रंथों का काफी ज्ञान नहीं था। राम तुमसे कहना चाहता है कि हिन्दुओं ने भी देश, काल और वस्तु को पहले ही से मौजूद अर्थात् स्वयं कर्त्ता के अन्दर मौजूद सिद्ध किया है। और उसीसे दिखलाया गया

है कि आपकी जाग्रत् अवस्था का अनुभव एक विचार से आपके स्वप्न-अवस्था के अनुभव का उत्तर-कार्य (after effect) है। धैर्य से सुनियेगा। आपकी गाढ़ निद्रा की अवस्था में आपको काल का कोई बोध नहीं होता, देश का कोई बोध नहीं होता, वस्तु (निमित्त) का कोई बोध नहीं होता। आप स्वप्न-अवस्था में उतरते हैं। वहाँ काल प्रकट होता है, देश की उत्पत्ति होती है, और वस्तु की भी। हिन्दू आपसे कहते हैं कि आपके स्वप्न-जगत् के देश, काल और वस्तु उसी तरह आपकी सुषुप्ति-अवस्था से निकलते हैं, जिस तरह बीज से नन्हा अंकुर अपने दुर्बल और अशक्त रूप में निकलता है। फिर आपकी जाग्रत्-अवस्था में देश, काल और वस्तु बढ़कर महान् वृक्ष की दशा में आ जाते हैं। वे बली होकर और पक कर एक ज़ोरदार नदी की दशा प्राप्त कर लेते हैं। वे अपना स्थूल रूप धारण करते हैं; ठीक जैसे-जैसे तुम बढ़ते हो, वैसे ही वैसे तुम्हारे साथ देश, काल और वस्तु के संकल्प भी बढ़ते जाते हैं यह समझते हुए अहंभावी दृष्टा (कर्त्ता) देश, काल और वस्तु के परिणाम के सिवाय और कुछ भी नहीं है, जैसे-जैसे ये वृद्धि पाते हैं, वैसे वैसे वह (अहंभाव) वृद्धि पाता है। आप के स्वप्नों में भी काल होता है; किन्तु अपने स्वप्नों के काल से, अपनी जाग्रत्-दशा के काल की तुलना कीजिये। स्वप्न का काल चंचल, अनिश्चित, धुँधला, अस्पष्ट, अस्थिर और अनियमित है। और जाग्रत्-अवस्था का काल स्वभावतः प्रौढ़ (पक्के) रूप में है। राम बतलाता है, आपके स्वप्न-अवस्था के काल से वह काल बलिष्ठ अर्थात् प्रौढ़तर है। आप जानते हैं, कि स्वप्न में कभी कभी मरे जी उठते हैं और जीते मर जाते हैं। आपकी जाग्रत्-दशा में ऐसा नहीं होता। इस दशा में काल निश्चित है। आपके स्वप्न-जगत् में भूतकाल भविष्य हो जाता है और भविष्य भूत हो जाता है। जाग्रत्-अवस्था में ऐसा नहीं होता।

आपने सुना होगा कि हज़रत मोहम्मद को स्वप्न में आठवें आकाश पर चढ़ने में बड़ा समय लगा था। किन्तु जब वे जागे, तो उन्हें मालूम हुआ कि केवल दो पल बीते थे।

इसी तरह आपकी जाग्रत्-दशा की चीज़ें आपके स्वप्न-दशा की चीज़ों से केवल जाति ही में नहीं, किन्तु प्रगाढ़ता और अंशों (परिमाण) में भी भिन्न हैं। आपकी स्वप्नावस्था में वस्तुयें विकारवान्, चंचल, अनिश्चित और अस्थिर हैं। वे बदली जा सकती हैं, जिस तरह छोटे पौधे की बाढ़ आप जिस तरफ चाहें मोड़ सकते हैं। किन्तु जब वह एक भारी वृक्ष हो जाता है, वह दूसरे रूप में ढाला, मोड़ा या बदला नहीं जा सकता। अपने स्वप्न-जगत् में अभी आप एक नारी देखते हैं, क्षण भर में वह घोड़ी हो जाती है। अभी आप अपने सामने एक जीता मनुष्य पाते हैं और बिना कुछ भी समय बीते वह मुर्दा हो जाता है। अभी आप अपने सामने एक पहाड़ देखते हैं और बात की बात में वह आग बन जाता है। जो चीजें आप अपनी स्वप्नावस्था में पाते हैं, वे गहरी नींद की दशा में मौजूद नहीं थीं। गहरी नींद की दशा अर्थात् सुषुप्ति से वे ऐसे निकल पड़ीं, जैसे हिम-शिलाओं से छोटी नदियाँ व चंचल नाले निकल पड़ते हैं। फिर आपकी जाग्रत्-अवस्था में यही पहले ही से उपस्थित काल और देश परिपक्व होकर कठिन और दृढ़ रूप में आ जाते हैं, निश्चित हो जाते हैं, अपनी एक विशेष दृढ़ता पाते हैं।

आपके स्वप्न-जगत् की बुद्धिमत्ता अर्थात् आपके स्वप्न-जगत् की बुद्धि जाग्रत्-अवस्था से सम्बन्ध रखती है। राम निजी अनुभव से जानता है कि जब वह विद्यार्थी था, तब प्रायः उसने स्वप्न में उन महा-कठिन सवालों को हल कर डाला जिन पर वह विचार करता रहता था। किन्तु जागने पर वह उन्हें न हल कर सका। ओह, तर्क-वितर्क

(प्रश्न लगाने की क्रिया) में भूल थी। आपके स्वप्न-जगत् के तर्क-वितर्क भी चंचल, विकारवान् किंतु जाग्रत्-दशा से सम्बन्ध रखने वाले हैं, जिस तरह अधिक बढ़ा हुआ वृक्ष भी चंचल, छोटे से पौधे, परिवर्तनशील कली वा परिवर्तनशील पौधे के सम्बन्धी हैं।

प्राय: राम ने स्वप्न में कवितायें रचीं। किन्तु जागने पर जब उसने कविता पर दृष्टि डाली, तो वह असम्बद्ध थीं, उसकी पंक्तियां (मात्रायें) ठीक न उतरीं। उसमें श्रृंखला (सिलसिला) का, और एकता का अभाव था। स्वप्न-अवस्था की युक्तिमाला जाग्रत्-दशा की युक्तिमाला से उसी तरह सम्बन्ध रखती है, जिस तरह नदी का सूक्ष्म-शरीर उसके स्थूल-शरीर का सम्बन्धी है; और आपके स्वप्न-जगत् का देश भी उसी तरह आपकी जाग्रत्-दशा के देश से जुड़ा हुआ है। (जाग्रत् अवस्था में) देश दृढ़, निरन्तर, अटूट है। अब आप कहेंगे, यह ठीक नहीं। यह क्या बात है कि हम अपने स्वप्नों में उन्हीं वस्तुओं को देखते हैं जिनको हम अपनी जाग्रत्-दशा में देखते हैं। हमारे स्वप्न हमारी जाग्रत्-दशा की केवल स्मृतियां हैं। राम कहता है, इससे क्या होता है ? यही सही। बीज क्या है ? बीज से सुंदर छोटा पौधा निकलता है, वह परिवर्तनशील, लोचदार है। इस परिवर्तनशील, लचकदार छोटे पौधे से बड़ा भारी, बलवान् वा कठोर वृक्ष उगता या बढ़ता है। बहुत ठीक। पुनः इस दृढ़ वृक्ष से कुछ और बीज प्राप्त होते हैं; वैसे ही बीज, जैसों ने इस वृक्ष को उपजाया था। अब ये बीज पूरे वृक्ष को अपने में धारण किये हुए हैं। वृक्ष ने अपना सारा सारांश और सारी शक्ति उलट कर फिर बीजों में रखदी। तो क्या हमें यह तर्क करना चाहिए कि वृक्ष बीज से नहीं निकला था ? क्या यह तर्क करने का हमें अधिकार है कि वृक्ष बीज से नहीं निकला ? नहीं, नहीं; ऐसी बहस करने का हमें कोई अधिकार नहीं है।

इसी तरह वेदान्त कहता है कि सुषुप्ति, जिसे राम आपकी बीज-अवस्था कहता है, यह गहरी नींद की दशा बीज के समान है। उसीसे स्वप्न-अवस्था आती है और उसी से जाग्रत्-अवस्था में स्थूल-शरीर मानों प्रकट होता या चढ़ता है। अब आपका जाग्रत्-अनुभव यदि फिर लौटाकर आप की नींद में जमाया अर्थात् घनीभूत किया जा सकता है, तो यह बिल्कुल स्वाभाविक है। यदि आपका जाग्रत्-अनुभव जमाया जा सकता है, आपकी स्वप्न-अवस्था में अर्थात् आपके स्वप्न-जगत् के अनुभव में लौटाया जा सकता है, तो इससे राम के बयान का खण्डन नहीं होता। ऐसा ही सही। फिर भी उससे आप यह कहने के अधिकारी नहीं हो जाते कि आपकी जाग्रत्-दशा आपके सूक्ष्म-शरीर या स्वप्न-देश से विकसित नहीं हुई थी। आप ऐसा कहने के अधिकारी नहीं हैं; ठीक उसी तरह, जिस तरह कि सारा वृक्ष बीज में जमा कर रख दिये जाने से हम यह कहने के अधिकारी नहीं हो जाते कि वृक्ष बीज से नहीं पैदा हुआ था। यदि आपको अपने स्वप्नों में साधारणतया अपनी जाग्रत्-दशा की स्मृतियां आती हैं, तो उससे आप राम के इस कथन को नकारने के अधिकारी नहीं हो जाते कि, देश, काल और वस्तु से ही अर्थात् स्वप्न-अवस्था के रूपान्तर या स्वप्नावस्था के अनुभव से ही जाग्रत्-दशा का अनुभव विकसित होता या बढ़ता है।

वेदान्त दर्शन कहता है, स्वप्न-अवस्था या जाग्रत्-अनुभव का जन्म आपकी गहरी नींद की अंधकार अवस्था शून्यता से हुआ था। संसार कुछ नहीं है, या संसार अविद्या का नतीजा है, हिन्दुओं के इस कथन का अभिप्राय आपकी सुषुप्ति अवस्था है जिसमें अव्यवस्था या शून्यता विराजी होती है। आपकी गहरी नींद की दशा भी एक प्रकार की शून्यता या अव्यवस्था, अविद्या, जमी हुई (घनीभूत) अविद्या है। यदि आप उसे ठीक अविद्या कहना चाहते हैं, तो गहरी नींद की

दशा ठीक अविद्या है और उसी अज्ञानता या अन्धकार से यह संसार, यह सारा भेदभाव और विकार प्रकट होता है, और वह अविद्या परिवर्तनशील है। आप जानते हैं कि स्वप्न-अवस्था में आप दो तरह की वस्तु देखते हैं, कर्त्ता और कर्म (subject and object)। वेदान्त के अनुसार कर्त्ता और कर्म साथ साथ आविर्भूत होते हैं। अपने स्वप्नों में आप एक ओर तो देखने वाले (दृष्टा) होते हैं और दूसरी ओर देखी जाने वाली चीज (दृश्य) बनते हैं। यदि स्वप्न में आप एक घोड़ा और उसका सवार देखते हैं, तो दोनों साथ ही दिखाई पड़ते हैं। यदि आप स्वप्न में पहाड़ देखते हैं, तो पहाड़ एक कर्म है और आप दृष्टा या देखनेवाले अर्थात् कर्ता हैं। वहाँ कर्ता और कर्म साथ ही प्रकट हो जाते हैं। वहाँ स्वप्न-जगत् में एक प्रकार के काल के द्वारा स्वप्न का भूत और भविष्य भी एक साथ पदार्थ का संगी हो जाता है। स्वप्न का भूत, वर्तमान और भविष्य काल, स्वप्न की अनन्तता, स्वप्न की वस्तु और स्वप्न के कर्ता तथा कर्म, ये सब के सब एक साथ ही प्रकट हो जाते हैं।

इसी तरह, वेदान्त कहता है, अपनी जाग्रत्-दशा में भी आप ही देखी जाने वाली वस्तु हैं और देखने वाले भी। एक ओर तो आप मित्र और शत्रु हैं और दूसरी ओर देखने वाले हैं। एक ओर आप शत्रु हैं और दूसरी ओर आप मित्र हैं, आप सब कुछ हैं। किन्तु स्वप्न की ये सब अद्भुत घटनायें, सुषुप्ति की ये आश्चर्य घटनायें और जाग्रत्-दशा के चमत्कार, ये सब के सब व्यापार विकारवान्, अनित्य, चंचल, अस्थिर और अनिश्चित हैं। वास्तविक स्वरूप, जिसकी सूर्य से तुलना की गई थी, अर्थात् असली आत्मा, तीनों शरीरों पर उसी तरह चमकता है, जिस तरह सूर्य नदी के तीनों शरीरों पर चमकता है। आत्मा नित्य, निर्विकार है। वह आत्मा या सूर्य आपकी सुषुप्ति-दशा की हिम-

शिला पर चमकता है। आपकी आत्मा या सूर्य से आपका जाग्रत्-अनुभव प्रकाशित होता है। और आप यह भी देखते हैं कि सूर्य केवल एक नदी के तीनों शरीरों पर ही नहीं चमकता है, किन्तु वही सूर्य ठीक उसी तरह संसार की सभी नदियों के तीनों शरीरों पर प्रकाश डालता है। इसी तरह, इस नदी का शरीर यदि उस नदी के शरीर से भिन्न है तो क्या हुआ ? यदि इस जीवन की नदी उस जीवन की नदी से दूसरी तरह पर बहती है, तो क्या हुआ ? किन्तु जीवन की इन सब नदियों पर, अस्तित्व की इन सब धाराओं पर वही नित्य, निर्विकार, निरन्तर आत्मा, या सूर्यों का सूर्य सब कालों में, सब अवस्थाओं में निर्विकार, अपरिवर्तनीय रूप में चमक रहा है। वही तुम हो, वही तुम हो। वहीआपका वास्तविक स्वरूप है। और आपका वास्तविक स्वरूप आपके मित्र का वास्तविक स्वरूप है, बल्कि हर एक का और सब का वास्तविक स्वरूप है। आपकी वास्तविक आत्मा केवल जाग्रत्-दशा में ही आपके साथ उपस्थित नहीं है, वह समान भाव से गहरी नींद की दशा में भी वर्तमान है, वह समान भाव से सब प्रकार की अवस्थाओं और विकारों में भी मौजूद है।

अनुभव करो कि वास्तविक आत्मा सारी चिन्ता, सारे भय से परे है, सब मुसीबतों और दुखों से दूर है। कोई आपको हानि नहीं पहुँचा सकता, कोई आपको चोट नहीं पहुँचा सकता।

Break, break, break, at the feet of thy crags, oh sea,
Break, break, break, at my feet, O world that be,
O suns and storms, O earthquakes, wars,
Hail, welcome, come, try all your force on me !
Ye nice torpedoes, fire ! my playthings, crack !
Oh shooting stars, my arrows, fly !

Your burning fire ! can you consume ?
O threatening one, you flame from me ;
You flaming sword, you cannon ball,
My energy headlong drives forth thee !
The body dissolved is cast to winds;
Well doth Infinity me enshrine !
All ears, my ears, all eyes, my eyes;
All hands, my hands; all minds, my minds !
I swallowed up death, all difference I drank up;
How sweet and strong a food I find !
No fear, no grief, no hankering pain;
All delight, or sun or rain !
Ignorance, darkness, quacked and quivered,
Trembled, shivered, vanished, for ever;
My dazzling light did parch and scorch it,
Joy ineffable ! Hurrah ! Hurrah !

टूट, टूट जा टूट, सिंधु ! अपने कगार के चरणों पर,
टूट, टूट जा टूट, जगत ! तू आकर मेरे चरणों पर ।
ऐ सूर्यो ! ऐ प्रबल वात्य ! ऐ भूकंपो ! ऐ समर महान !
नमस्कार । स्वागत । मुझ पर अजमाओ अपनी शक्ति सुआन ।
तू सुन्दर पनडुब्बी नौका, अग्नि ! खेल की मेरी वस्तु,
दरको ! ऐ टूटते सितारो, मेरे बाणों, छूटो ! अस्तु ।
तू प्रज्वलित अग्नि ! कर सकती है क्या मुझको भस्मीभूत ?
तू मुझसे, धमकानेवाली ! होती है प्रज्वलती भूत ।
तू लपकती कृपाण तथा तू गेंद जरा सी अति सामान्य,
मेरी शक्ति हँकाती तुझको अधाधंध कर तेरा मान्य ।

छिन्न-भिन्न यह देह पवन में फेंक दिया जब जाता है,
अनन्तता ही तब फिर मेरा मुख्यालय बन जाता है।
हैं सब कान, कान मेरे; सब नेत्र, नेत्र मेरे ही हैं;
हाथ सकल हैं कर मेरे; मन सारे, मन मेरे ही हैं।
निगल गया मैं मृत्यु, भेद भी गया पान कर मैं सारा;
कैसा मधुर सुपुष्ट सुभोजन पाता हूँ मैं बिन मारा।
भीत न कोई, शोक न कोई; नहीं लालसा की पीड़ा;
अखिल, अखिल आनन्द, सूर्य या वृष्टि करें नित ही क्रीड़ा।
ज्ञानशून्यता, अंधकार, हैं व्याकुल औ अति हिले हुए,
काँपे, औ थर्राए, गायब हुए, सदा के लिए मुए।
मेरी इस जगमगी ज्योति ने उसे झुलस औ भून दिया,
अमितानंद अहाहाहा! मैं! वाह! वाह!! क्या खूब किया!!!

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

वास्तविक आत्मा

—:०❀०:—

ता० ७ जनवरी १९०३ को अमेरिका के सैन फ्रांसिस्को के गोल्डेन-गेट हाल में दिया हुआ व्याख्यान ।

—:०❀०:—

भद्र पुरुषों और महिलाओं के रूप में सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ।

एक जर्मन कथा के अनुसार एक मनुष्य ने अपनी प्रतिच्छाया खो दी थी। यह बड़ी ही विचित्र बात है। एक मनुष्य ने अपनी छाया खो दी और उसके पीछे उसे हानि उठानी पड़ी। उसके सब मित्रों ने उसे तज दिया। सम्पूर्ण सम्पत्ति ने उसे छोड़ दिया, और वह इसके कारण बड़ी विपत्ति में पड़ गया। छाया खोने के बदले जिस मनुष्य ने अपना सारांश खो दिया हो उसके लिए आप क्या विचार करेंगे? जो मनुष्य केवल अपनी छाया खो बैठा है उसके उद्धार की आशा तो हो भी सकती है, किन्तु जो अपना वास्तविक सारांश अर्थात् शरीर खो बैठे उसके लिए कौनसी आशा हो सकती है?

इस संसार में अधिकांश मनुष्यों की यही गति है। अधिकांश मनुष्यों ने अपनी छाया नहीं किन्तु अपना सारांश या अपनी वास्तविकता खो दी है। अचम्भों का अचम्भा! शरीर छाया मात्र है, आपका वास्तविक स्वरूप अर्थात् वास्तविक आत्मा ही आप की वास्तविकता है। हरएक मनुष्य हम से

अपनी छाया की चर्चा करेगा; हरएक पुरुष अपने शरीर से सम्बन्धित अति तुच्छ से तुच्छ बात बतावेगा; किन्तु अपने वास्तविक स्वरूप, अर्थात् वास्तविक तत्व वा वास्तविक आत्मा सम्बन्धी कुछ भी अथवा किंचिन्मात्र बात बताने वाले कितने थोड़े आदमी हैं। तुम कौन हो ? यदि तुमने अपनी आत्मा ही खो दी, तो सारे संसार की प्राप्ति से क्या लाभ ? लोग सारे संसार के पाने की चेष्टा कर रहे हैं, परन्तु वे जीवात्मा से अर्थात् आत्मा से रहित हो रहे हैं। खोगया, खोगया, खोगया। क्या खो गया ? घोड़ा या घोड़सवार ? घोड़सवार खो गया। शरीर घोड़े के सदृश है और आत्मा अर्थात् सच्चा स्वरूप या जीवात्मा घोड़सवार के तुल्य है। घोड़ा तो है, घोड़सवार खो गया। हरएक मनुष्य घोड़े के विषय में हम से किंचित् या सब कुछ कह सकता है, परन्तु सवार, घोड़सवार, घोड़े के मालिक के सम्बन्ध में हम कुछ जानना चाहते हैं। आज रात हमारा यह जानने का विचार है कि सवार, घोड़सवार वास्तविक स्वरूप या आत्मा क्या वस्तु है। यह गम्भीर विषय है। यह वह विषय है जिसके सम्बन्ध में संसार के तत्ववेत्ता अपने दिमाग़ को छानते रहे हैं, जिस पर प्रत्येक ने और सब ने भरसक (यथाशक्ति) प्रयत्न किया है। यह गहरा विषय है, और इस घण्टे भर या कुछ कम ज्यादा समय में इस विषय पर उचित विचार आप नहीं कर सकते। फिर भी एक कथा या उदाहरण के द्वारा हम इसे यथासम्भव सरल बनाने का उद्योग करेंगे।

एक बार यह विषय १५ या १६ वर्ष के एक लड़के को समझाया गया था और थोड़े ही समय में उसने पूरी तरह से समझ लिया था। यदि वह १५ या १६ वर्ष का लड़का समझ गया था, तो आप सब तथा आपमें से हर एक इस विषय को भली भाँति समझ लेंगे, यदि आप एकाग्र होकर सुनेंगे वा पूरा ध्यान देंगे। उस लड़के को समझाने में जिस ढंग से काम लिया गया था, आज भी उसी का प्रयोग किया जायगा।

एक बार एक भारतीय राजा का पुत्र राम के पास पहाड़ों पर आया, और यह प्रश्न किया, "स्वामी जी ! स्वामी जी ! ईश्वर क्या है ?" यह जटिल प्रश्न है, बड़ा कठिन सवाल है। सकल धर्म-कर्म और अध्यात्म-शास्त्र इसी एक विषय के अनुसन्धान में रत है, और तुम ज़रा सी देर में इसे पूरी तरह जान लेना चाहते हो। उसने कहा, "हाँ स्वामीजी ! हाँ महाराज ! और किससे मैं यह समझने जाऊँ। मुझे समझा दीजिये।" लड़के से प्रश्न किया गया, "प्यारे राजकुमार ! तुम जानना चाहते हो, ईश्वर क्या वस्तु है, तुम ईश्वर से परिचित होना चाहते हो; परन्तु क्या तुम यह नियम नहीं जानते कि किसी महापुरुष से जब कोई मनुष्य भेंट करने की इच्छा करता है, तो पहले उसे अपना परिचय-पत्र (कार्ड) भेजना पड़ता है, उसे अपना नाम-धाम भेजना पड़ता है ? तुम ईश्वर से मिलना चाहते हो। उचित होगा कि अपना परिचय-पत्र ईश्वर को भेजो, अपनी हुलिया ईश्वर को बतलाओ। अपना परिचय-पत्र उसे दो। मैं साक्षात् ईश्वर के हाथ में उसे रख दूँगा, और ईश्वर तुम्हारे पास आ जायगा, तथा ईश्वर क्या है, तुम देख लोगे।" लड़के ने कहा, "यह बहुत ठीक है, उचित बात है। मैं कौन हूँ, आप को अभी जताता हूँ। मैं उत्तर-भारत में हिमालय पर रहने वाले अमुक राजा का पुत्र हूँ। यह मेरा नाम है।" एक पर्चे पर उसने ये नाम-धाम लिख दिया। राम ने पर्चा ले लिया और पढ़ा। पर वह तुरन्त ईश्वर के हाथ में न रखा गया। और उसी राजकुमार को लौटा दिया गया। उससे कहा गया, "अरे राजकुमार ! तुम नहीं जानते कि तुम कौन हो। तुम उस निरक्षर, अज्ञानी आदमी के समान हो, जो तुम्हारे पिता अर्थात् राजा से मिलना चाहता है और अपना नाम तक नहीं लिख सकता। क्या तुम्हारा पिता अर्थात् राजा उससे मिलेगा ? राजकुमार ! तुम अपना नाम नहीं लिख सकते। ईश्वर तुम से कैसे मिलेगा ? पहले हमें

ठीक ठीक बताओ कि तुम कौन हो, और तब ईश्वर तुम्हारे पास आयेगा और खुले चित्त से तुम से भेंट करेगा।

लड़के ने सोचा। वह इस विषय पर चिंतन करने लगा। उसने कहा, "स्वामिन्! स्वामिन्! अब मैं समझा, अब मैं समझा। मैंने अपना ही नाम लिखने में भूल की थी। मैंने केवल शरीर का पता आपको बताया, और कागज पर यह नहीं लिखा कि मैं कौन हूँ।"

पास ही राजकुमार का एक अनुचर खड़ा हुआ था। अनुचर इसे नहीं समझ सका! अब राजकुमार से कहा गया कि तुम अपना अभिप्राय अनुचर को साफ़ साफ़ बताओ, और कुमार ने उस अनुचर से यह प्रश्न किया:—"अमुकामुक महाशय!" यह परिचय-पत्र (कार्ड) किसका है?" उस मनुष्य ने कहा, "मेरा!" तब अनुचर के हाथ की छड़ी लेकर कुमार ने उससे पूछा, "ओ अमुकामुक महाशय! यह छड़ी किसकी है?" मनुष्य बोला, "मेरी।" अच्छा, तुम्हारे सिर पर यह पगड़ी किसकी है? मनुष्य ने कहा, "मेरी।" कुमार ने कहा, "बहुत ठीक! यदि पगड़ी तुम्हारी है, तो तुम्हारा पगड़ी से एक सम्बन्ध है; पगड़ी तुम्हारा माल है, और तुम मालिक हो। तब तुम पगड़ी नहीं हो, पगड़ी तुम्हारी है।" उसने कहा; बेशक, यह तो साफ ही है।" "अच्छा, पेंसिल तुम्हारी चीज़ है, पेंसिल तुम्हारी ही है, पर तुम पेंसिल नहीं हो।" उसने कहा, "मैं पेंसिल नहीं हूँ, क्योंकि पेंसिल मेरी है, वह मेरी सम्पत्ति है, "मैं स्वामी हूँ।" बहुत ठीक! तब कुमार ने उस अनुचर के कान हाथ से पकड़कर उसीसे पूछा, "ये कान किसके हैं?" और अनुचर ने कहा, "मेरे।" कुमार ने कहा, "बहुत ठीक! कान तुम्हारी वस्तु हैं, कान तुम्हारे हैं, परिणाम यह हुआ कि तुम कान नहीं हो। बहुत ठीक! नाक तुम्हारी सम्पत्ति है, नाक तुम्हारी है। इसलिए तुम नाक नहीं हो। इसी तरह, (अनुचर के शरीर की ओर

संकेत करते हुए) यह शरीर किस का है ? अनुचर ने कहा, "शरीर मेरा है, यह शरीर मेरा है।" अनुचर जी ! यदि देह तुम्हारी है, तो तुम देह नहीं हो; तुम देह नहीं हो सकते, क्योंकि तुम कहते हो, कि देह मेरी है। तुम देह नहीं हो सकते। मेरा शरीर, मेरे कान, मेरा सिर, मेरा हाथ, यही बयान सिद्ध करता है कि तुम कोई दूसरी वस्तु हो; और हाथ, कान, नेत्र इत्यादि के सहित शरीर कोई दूसरी ही वस्तु है। यह तुम्हारा माल है, तुम मालिक हो, तुम स्वामी हो; शरीर तुम्हारी पोशाक के तुल्य है, और तुम मालिक हो ! शरीर तुम्हारे घोड़े के समान है और तुम इसके सवार हो। फिर तुम क्या हो ? अनुचर इतनी दूर तक तो समझ गया और कुमार के इस कथन से सहमत हुआ कि अपना पता बताने के अभिप्राय से जब उन्होंने (कुमार ने) क़ाग़ज़ पर अपने शरीर का पता लिख दिया था, तब वे ग़लती पर थे। तुम न शरीर हो, न कान हो, न नाक हो, न नेत्र हो, यह सब कुछ भी नहीं हो। तब फिर तुम हो क्या ? अब कुमार विचारने लगा और बोला—"ठीक, मैं मन हूँ, मैं मन हूँ, अवश्य मैं मन हूँ।" अब उस कुमार से पूछा गया, "क्या वास्तव में ऐसा ही है ?"

अच्छा, क्या तुम मुझे बता सकते हो कि तुम्हारे शरीर में कितनी हड्डियाँ हैं ? क्या बता सकते हो कि आज सबेरे तुमने जो भोजन किया था, वह तुम्हारे शरीर में कहाँ पर रक्खा है ? कुमार कोई उत्तर नहीं दे सका और उसके मुँह से ये शब्द निकल पड़े, "जी, मेरी बुद्धि वहाँ तक नहीं पहुँचती। मैंने यह नहीं पढ़ा है। मैंने शरीरिक या प्राणविद्या अभी तक नहीं पढ़ी है। मेरी बुद्धि इसे नहीं समझ सकती, मेरे मस्तिष्क में यह नहीं समाता, मेरा मन इसकी धारणा नहीं कर सकता।"

अब कुमार से पूछा गया, "प्यारे कुमार ! ऐ प्रिय बालक ! तुम

कहते हो, मेरा मन इसे नहीं धारण कर सकता, मेरी बुद्धि वहाँ तक नहीं पहुँचती, मेरा मस्तिष्क इसे नहीं समझ सकता। ऐसी बातें कह कर तुम स्वीकार करते हो कि मस्तिष्क तुम्हारा है, मन तुम्हारा है, बुद्धि तुम्हारी है। अच्छा, यदि बुद्धि तुम्हारी है तो तुम बुद्धि नहीं हो। यदि मन तुम्हारा है तो तुम मन नहीं हो। यदि दिमाग़ तुम्हारा है तो तुम दिमाग़ नहीं हो। तुम्हारे इन्हीं शब्दों से प्रकट होता है, कि तुम बुद्धि के प्रभु हो, दिमाग़ के मालिक हो, और मन के शासक हो। जब तुम मन, बुद्धि या मस्तिष्क नहीं हो। तो तुम क्या हो? कृपा करके विचारो, ख़ूब विचारो, और सावधानी से हमें ठीक ठीक बताओ कि तुम क्या हो। तभी ईश्वर ठीक तुम्हारे पास लाया जायगा, तुम ईश्वर को देखोगे, तुम सीधे ईश्वर के सामने पहुँचा दिये जाओगे। दया करके हमें बताओ कि तुम कौन हो।"

लड़का सोचने लगा, विचारने लगा, पुनः पुनः विचारने लगा, परन्तु और आगे न जा सका। उसने कहा, "मेरा मन, मेरी बुद्धि और आगे नहीं जा सकते"।

ओ! ये शब्द कैसे सच्चे हैं। सचमुच मन या बुद्धि अन्तरस्थ सच्चे ईश्वर या देव तक नहीं पहुँच सकती। सच्ची आत्मा, सच्चा ईश्वर शब्द और मन की पहुँच से परे है।

लड़के से कहा गया कि अब तक तुम्हारी बुद्धि जहाँ तक पहुँची कुछ देर बैठ कर उस पर विचार करो। "मैं शरीर नहीं हूँ। मैं मन नहीं हूँ।" यदि ऐसा है तो इसे भान (महसूस) करो, इसे अमल में लाओ; बोध की भाषा में, कार्य की भाषा में इसकी आवृत्तियाँ करो; अनुभव करो कि तुम शरीर नहीं हो। यदि इस विचार के अनुकूल अपना जीवन बना दो, यदि सत्य के इतने ही अंश को व्यवहार में तुम ले आओ, यदि तुम शरीर और मन से ऊपर उठ जाओ, तो सब चिन्ता

और भय से तुम छूट जाते हो। शरीर और मन की कोटि से अपने को ऊँचा करते ही तुम्हें भय छोड़ देता है। समस्त चिन्ता दूर हो जाती है, सब रंज भाग जाता है, यदि तुम सत्य के इतने ही अंश का अनुभव करते हो कि तुम शरीर और मन से परे कोई अन्य वस्तु हो।

इसके बाद बालक को यह जानने में कुछ सहायता दी गई कि वह स्वयम् क्या है, और उससे पूछा गया, "भाई राजकुमार! आज तुमने क्या काम किया है? क्या कृपापूर्वक हमें बताओगे कि आज सबेरे आपने कौन कौन से काम किये हैं?"

वह वर्णन करने लगा, "मैं प्रातःकाल जागा, स्नान किया, और अमुक अमुक काम किया, भोजन किया, बहुत कुछ पढ़ा, कुछ चिट्ठियाँ लिखीं, कुछ मित्रों से मिलने गया, कुछ मित्रों से अपने घर पर भेंट की और यहाँ आप (स्वामी जी) के दर्शन करने आया"।

अब कुमार से प्रश्न किया गया, "बस, यही? क्या तुम ने और बहुत कुछ काम नहीं किया? केवल इतना ही? जरा सोचो"। उसने बार बार विचार किया और फिर इसी तरह के कुछ और काम बताये। राम ने कहा "इतना ही सब कुछ नहीं है। तुमने सैकड़ों, हज़ारों, बल्कि लाखों और काम किये हैं। अगणित काम तुमने किये हैं, और उन्हें बताना तुम अस्वीकार करते हो। यह उचित नहीं है। तुमने जो कुछ किया हो, कृपया हमें बता दो। आज सबेरे तुमने जो कुछ किया हो हमें सब बता दो"।

ऐसी अद्भुत बात सुन कर कि बताये हुए कामों के सिवाय और भी हज़ारों काम उसने किये हैं, कुमार चकित हुआ। "महाराज! मैंने आप से जो कुछ बताया है उसके सिवाय कुछ नहीं किया, वास्तव में कुछ नहीं किया"। नहीं, तुमने करोड़ों, अरबों, संखों बातें और की हैं। सो कैसे?

लड़के से पूछा गया, "स्वामी जी की ओर इस समय कौन देख रहा है ?" उसने कहा, "मैं"। क्या तुम यह चेहरा, यह गङ्गा नदी, जो हम लोगों के निकट बह रही है, देख रहे हो ? उसने कहा "हाँ, बेशक।" अच्छा, तुम नदी देखते और स्वामीजी का मुखमण्डल देखते हो, किन्तु नेत्रों की छः नसों को कौन चला रहा है ? तुम जानते हो कि जब हम देखते हैं, तो आँखों की छः नसें डोलती हैं ? यह किसी दूसरे का काम नहीं हो सकता, यह कोई अतिरिक्त वस्तु नहीं हो सकती। देखने के कार्य में अवश्य आप का ही अपना आप होगा जो आँखों की नसों को डोलाता है।

लड़के ने कहा, "ओह, अवश्य यह मेरा ही काम हो सकता है, कोई दूसरी वस्तु नही हो सकती।"

अच्छा, इस समय देख कौन रहा है, इस भाषण को सुन कौन रहा है ? लड़के ने कहा, "मैं, मैं"। अच्छा, यदि तुम देख रहे हो, यदि तुम यह उपदेश सुन रहे हो, तों वक्तृत्व-शक्ति-वाली नसों को कौन फड़का रहा है ? तुम्हीं, तुम्हीं होगे। दूसरा कोई नहीं। आज सबेरे भोजन किस ने किया था ? लड़के ने कहा, "मैंने, मैंने"। अच्छा, यदि तुमने आज सबेरे भोजन किया था, और तुम्हीं कल टट्टी जाकर उसे निकाल दोगे, तो भोजन को पचाता और एकरस कौन करता है ? वह कौन है, कृपया बताइये, हमें बताइये ? यदि तुमने भोजन खाया था और निकाल दिया था, तो उसे पचाने और एकरस करनेवाले भी तुम्हीं हो सकते हो, दूसरा कोई नहीं हो सकता। वे दिन गये जब किसी प्राकृतिक चमत्कार की व्याख्या के लिए बाहरी कारणों की खोज की जाती थी। यदि कोई मनुष्य गिर जाता था, उसके गिरने का कारण कोई बाहरी प्रेत बताया जाता था। शङ्का के ऐसे समाधानों को विज्ञान-शास्त्र नहीं मानता। विज्ञान और तत्व-शास्त्र

आप से कहते हैं कि घटना का कारण स्वयम् घटना में ही ढूँढ़ो।

तुम भोजन करते हो, टट्टी जाते हो और उसे निकाल बाहर करते हो। जब वह पचता है, तो अवश्य तुम्हीं उसके पचाने वाले होते हो, कोई बाहरी शक्ति आकर उसे नहीं पचाती, वह तुम्हारा अपना आप ही होना चाहिए। पाचन का कारण भी तुम्हारे ही भीतर खोजना होगा, न कि तुम से बाहर।

अच्छा, लड़के ने यहाँ तक स्वीकार किया। अब उससे प्रश्न हुआ, "प्यारे कुमार! ज़रा सोचो, थोड़ी देर के लिए विचार करो। पाचन क्रिया के अन्दर सैकड़ों गतियाँ होती हैं। पाचन क्रिया में, चबाने में, मुख में गिलटियों (glands) से राल निकलती है। दूसरे स्थान में गलाने (oxidation) की दूसरी क्रिया हो रही है। यहाँ रक्त बन रहा है, यहाँ नाड़ियों में रक्त-संचरण हो रहा है। यहाँ वही भोजन शरीर के पट्ठों (muscles, स्नायु) नसों, हड्डियों और बालों में बदला जा रहा है। यहां शरीर में वृद्धि की क्रिया हो रही है। यहाँ बहुत सी क्रियायें हो रही हैं, और शरीर के भीतर की इन सब क्रियाओं का सम्बन्ध पाचन और परिपाक की क्रिया से है।

यदि तुम भोजन करते हो, तो साँस लेने का कारण भी तुम्हीं हो, तुम्हीं अपनी नाड़ियों में रक्त के सञ्चारक हो, तुम्हीं बाल उगाते हो; तुम्हीं शरीर की वृद्धि करते हो। और अब ध्यान दो कि कितने कार्य, कितनी क्रियायें तुम हर क्षण करते रहते हो।

लड़का बारंबार सोचने लगा और बोला, "वस्तुतः, महाराज जी! मेरे शरीर में, अर्थात् इस शरीर में हज़ारों क्रियायें हो रही हैं, जिनको बुद्धि नहीं जानती, मन जिनसे बेख़बर है, और फिर भी वे हो रही हैं। और इन सब का कारण अवश्य मैं ही हो सकता हूँ। इन सब का कर्त्ता

मैं ही हूं और निस्सन्देह मेरा यह कहना ग़लत था कि मैंने कुछ ही काम किये हैं, इनसे अतिरिक्त और नहीं किये, अर्थात् वही कुछ काम किये; जो मेरी बुद्धि के द्वारा हुए थे।

इसे और भी साफ कर देना चाहिए। तुम्हारे इस शरीर में दो प्रकार के काम हो रहे हैं, दो तरह के कार्य हो रहे हैं; एक अपनी इच्छा से, और दूसरे अनिच्छा से। अपनी इच्छा से किये हुए काम वे हैं जो बुद्धि और मन के द्वारा होते हैं। उदाहरण के लिए:—लिखना, पढ़ना, चलना, बातचीत करना, खाना-पीना, ये कार्य बुद्धि और मन के द्वारा किये जाते हैं। इसके सिवाय हज़ारों क्रियायें और कार्य ऐसे हो सकते हैं कि जो सीधे सीधे किये जा रहे हैं और जिनमें मन या बुद्धि की आढ़त (agency) या माध्यम (medium) की आवश्यकता नहीं। उदाहरण के लिए:—साँस लेना, नाड़ियों में रक्त का सञ्चारन, बालों का बढ़ना, इत्यादि।

लोग यह भूल, बल्कि बड़ी भूल करते हैं कि केवल उन्हीं कामों को अपने किये हुए मानते हैं, जो मन या बुद्धि की आढ़त द्वारा होते हैं। अन्य सब करतूतें और कार्य, जो बुद्धि या मन की आढ़त के बिन सीधे सीधे हो रहे हैं, उन्हें वे बिलकुल अस्वीकार कर देते हैं। उन्हें वे पूरी तरह से परे हटा देते हैं। उनकी वे नितान्त परवाह नहीं करते। और इस भूल तथा लापरवाही से अपने शुद्ध स्वरूप को इस तरह छोटे से मन में कैद करने अथवा अनन्त को छोटे से दिमाग के साथ अभेद करने से लोग अपने को दुखिया और अभागा बना रहे हैं। वे कहते हैं, "ओह, ईश्वर हमारे भीतर है।" बहुत अच्छा, स्वर्ग का साम्राज्य तुम्हारे भीतर है, ईश्वर तुम्हारे भीतर है, किन्तु वह सार पदार्थ (kernel), जो तुम्हारे भीतर है, वह सार पदार्थ (गूदा) तुम स्वयं हो, न कि ऊपर का खोल (छिलका)। दया करके इस पर गम्भीरता से

विचार कीजिये। विचारो कि तुम गूदा हो या छिलका ? क्या तुम वह हो, जो भीतर है, या वह जो बाहरी छिलका है ?

कुछ लोग कहते हैं, "अजी ! मैं खाता हूँ और प्रकृति पचाती है ; अजी ! मैं देखता हूँ किन्तु प्रकृति नसों को चलाती है ; अजी ! मैं सुनता हूँ किन्तु नसों को प्रकृति कँपाती है।" न्याय, सच्चाई और स्वाधीनता के नाम पर ज़रा विचारिये तो कि आप यह प्रकृति हैं या केवल शरीर ? समझ रखिये; आप वह प्रकृति हैं। आप अनन्त ईश्वर हैं। यदि पूर्व-निश्चयों को हटाकर, सब पूर्व-धारणाओं को दूर कर, और अन्धे विश्वासों को त्याग कर आप इस बात पर चिंतन करें, इसका पता लगावें, इसकी परीक्षा करें और इसकी छानबीन करें, तो आपका भी वही विचार हो जायगा, जो प्रकृति के उस रूप का जिसे आप राम कहते हैं। आप देखेंगे कि आप गूदा या सार हैं, प्रकृति हैं, अर्थात् आप संपूर्ण प्रकृति हैं।

आप में से बहुतों ने इस तर्क का अभिप्राय समझ लिया होगा। किन्तु वह लड़का, भारतीय राजकुमार इसे भली-भाँति नहीं समझा। उसने कहा, "भला, यहाँ तक तो मैं समझ गया कि मैं बुद्धि से परे कोई वस्तु हूँ।" इसी समय कुमार के अनुचर ने प्रश्न किया, "महाराज ! मुझे ज़रा और अच्छी तरह समझा दीजिये, मैं अभी नहीं समझा हूँ।" तब उस अनुचर से पूछा गया, "हे अमुकामुक प्यारे ! जब तुम सो जाते हो, तब जीते रहते हो या मर जाते हो !" उसने उत्तर दिया, "जीता रहता हूँ, मैं मर नहीं जाता।" और बुद्धि का क्या हाल होता है ! उसने कहा, मैं स्वप्न देखता रहता हूँ, बुद्धि तब भी बनी रहती है।" जब तुम गहरी नींद या सुषुप्ति में होते हो (आप जानते हैं कि एक दशा ऐसी होती है कि जो गहरी नींद या सुषुप्ति

कहलाती है। उस दशा में स्वप्न भी नहीं दिखाई पड़ते, तब बुद्धि कहाँ रहती है, मन कहाँ होता है!

वह सोचने लगा—"हाँ! वह शून्यता में चली जाती है। वह वहाँ नहीं है; अर्थात् बुद्धि वहाँ नहीं है, मन वहाँ नहीं है।" किंतु तुम वहाँ हो या नहीं! उसने कहा, "ओह, मैं अवश्य वहाँ ही हूँ, मैं मर नहीं जाता, मैं वहीं रहता हूँ।" अच्छा, अब ध्यान दो। गहरी नींद की दशा में भी जब बुद्धि नहीं रह जाती है, जहाँ बुद्धि मानो खूँटी या बाँस पर टाँगे हुए वस्त्र की तरह हो जाती है, जहाँ बुद्धि उतार कर अरगनी पर टाँगे हुए अँगरखे के समान है; तुम तब भी वहाँ हो, तुम मर नहीं जाते। लड़के ने कहा "बुद्धि वहाँ नहीं रहती, और मैं मर नहीं जाता, यह मेरी समझ में अच्छी तरह नहीं आता।"

फिर लड़के से पूछा गया, यह गहरी नींद लेकर जब तुम जागते हो, तब जागने के बाद क्या ऐसी बातें नहीं कहते? "आज रात को मुझे खूब नींद आई, आज मैंने स्वप्न नहीं देखे।" क्या ऐसी युक्तियाँ तुम्हारी नहीं होतीं? उसने कहा, "होती हैं।" बहुत अच्छा, यह बात बड़ी सूक्ष्म है। तुम सब को ध्यान से सुनना होगा। गहरी नींद से जागने पर जब यह बात कही जाती है कि "मुझे ऐसी गहरी नींद आई कि मैंने स्वप्न नही देखे; मैंने नदियां, पहाड़ नहीं देखे; उस अवस्था में न कोई पिता, न माता थीं, न घर था, न कुटुम्ब; ऐसी कोई वस्तु नहीं थीं; सब वस्तुयें मुर्दा और लुप्त थीं; वहां कुछ नहीं, कुछ नहीं, कुछ भी नहीं था; मैं सो गया और वहाँ कुछ नहीं था।" यह बयान उस आदमी का सा बयान है जिसने एक जगह का ऊजड़पन देखा और कहा था, "घोर रात्रि में अमुक अमुक स्थान पर एक भी मनुष्य मौजूद नहीं था।" उस मनुष्य से यह बयान लिखने को कहा गया था। उसने इसे काग़ज पर लिखा। हाकिम ने उससे पूछा—अच्छा, क्या यह

तेरा बयान सत्य है ? उसने कहा, "जी हाँ"। अच्छा, यह बयान तुम्हारा सुना-सुनाया है या अपने निजी ज्ञान के आधार पर है ? क्या तुम निज नेत्र से देखने वाले साक्षी हो ? उसने कहा, "जी हाँ ! मैं निज नेत्र से देखने वाला गवाह हूँ। किसी के सुने सुनाये पर आधारित नहीं है"। तुम इनके निज नेत्र से देखने वाले गवाह हो कि कागज़ पर वर्णित स्थान में वर्णित समय पर कोई भी मनुष्य उपस्थित नहीं था। उसने कहा, "हाँ"। तुम क्या हो ? तुम मनुष्य हो या नहीं ? उसने कहा, "हाँ, मैं एक मनुष्य हूँ। तो फिर तुम्हारे कथनानुसार यदि यह बयान सत्य है, तो हमारे अनुसार यह असत्य है। तुम वहाँ मौजूद थे और तुम भी एक मनुष्य हो, इसलिये यह बयान कि "वहाँ एक भी मनुष्य न था," अक्षरशः सत्य नहीं हो सकता, तुम तो वहाँ मौजूद थे। तुम्हारे अनुसार यह बयान सत्य होने के लिए हमारे अनुसार इसे असत्य होना पड़ेगा, क्योंकि वहाँ कोई भी चीज़ न होने की साक्षी के लिए कोई अन्य चीज़ वहाँ अवश्य होनी चाहिए, कम से कम स्वयं तुम को उस स्थान पर होना ही चाहिए।

इसी तरह गहरी नींद लेने के बाद जब तुम जागते हो, तो यह बात कहते हो, "मैंने स्वप्न में कोई चीज़ नहीं देखी"। अच्छा, हम कह सकते हैं कि तुम तो मौजूद रहे ही होंगे। वहाँ कोई पिता, माता, पति, स्त्री, घर, नदी, परिवार नहीं उपस्थित था, परन्तु तुम तो उपस्थित ही होगे। तुम जो गवाही दे रहे हो, वही तुम्हारी गवाही सिद्ध कर रही है कि तुम सोये नहीं, तुम्हें निद्रा नहीं आई। यदि तुम्हें नींद आई होती तो हम से वहाँ की शून्यता की बात कौन बताता ? तुम बुद्धि से परे कोई वस्तु हो। बुद्धि सोई हुई थी, मस्तिष्क एक प्रकार से आराम में था, किन्तु तुम निद्रा में नहीं थे। यदि तुम सोते होते तो रक्त-नाड़ियों में रक्त का सञ्चारण कौन करता ? पेट में

पाचन-क्रिया कौन ज़ारी रखता ? तुम्हारे शरीर की बाढ़ (वृद्धि) को कौन जारी रखता, यदि तुम वास्तव में गहरी नींद की दशा को प्राप्त हुए होते? इस प्रकार तुम ऐसी कोई वस्तु हो जो कभी नहीं सोती, बुद्धि सोती है परन्तु तुम नहीं। मैं शरीर, बुद्धि, और मन से परे कोई वस्तु हूँ।

अब लड़के ने कहा, "जी महाराज ! महाराज जी ! मैं यहाँ तक समझ गया और जान गया कि मैं दिव्य शक्ति हूँ, मैं अनन्त शक्ति हूँ, जो कभी नहीं सोती, कभी नहीं बदलती। मेरी जवानी में शरीर की दूसरी दशा थी, मेरे बचपन में मन वैसा नहीं था जैसा अब है, शरीर भी वैसा नहीं था जैसा अब है। मेरे बचपन में मेरी बुद्धि, शरीर और मन मेरी आज की दशा से नितान्त भिन्न हालत में थे।" डाक्टर लोग हमें बतलाते हैं कि सात वर्ष के बाद सम्पूर्ण कायव्यूह बिलकुल ही बदल जाता है। प्रत्येक क्षण शरीर बदल रहा है, प्रति पल मन बदल रहा है, और बचपन में आप के जो मानसिक विचार थे, जो मानसिक भावनायें थीं, वे अब कहाँ हैं ? बालकपन के दिनों में आप सूर्य को देवदूतों के खाने के लिए सुन्दर कचौरी समझते थे, चन्द्रमा सीसे का एक सुन्दर टुकड़ा था, तारे हीरों के समान बड़े थे। ये विचार अब कहाँ चले गये ? तुम्हारा मन, तुम्हारी बुद्धि बिलकुल ही बदल गई है, उनमें सोलह आने परिवर्तन हो गया है। किन्तु तुम अब भी कहते हो, "जब मैं बच्चा था, जब मैं लड़का था, जब सत्तर वर्ष का हो जाऊँगा"। तुम अब भी ऐसी बातें कहते हो, जिनसे स्पष्ट होता है कि तुम कोई ऐसी चीज़ हो, जो बचपन में भी थी, जो बालकपन में भी थी और जो सत्तर वर्ष की अवस्था में भी वही रहेगी। जब तुम कहते हो, "मैं सो गया, मुझे गहरी नींद आ गई, इत्यादि," जब तुम ऐसी बातें कहते हो, तब स्पष्ट होता है कि शुद्ध "मैं" तुम में है, वास्तविक आत्मा

तुम में है, जो स्वप्न देश में वैसा ही रहता है, जैसा कि जाग्रत में, तुम्हारे भीतर ऐसी कोई वस्तु अवश्य है, जो तुम्हारी मूर्छावस्था में भी रहती है, और जो उस समय भी रहती है जब तुम नहाते हो, खाते हो और लिखते-पढ़ते हो। कृपा करके जरा सोचिये, विचारिये, ध्यान में लाइये। क्या तुम ऐसी कोई वस्तु नहीं हो जो सब परिस्थितियों में एक समान रहती है, जिस की दशा निर्विकार है, जो आज, कल और सर्वदा एकरस है? यदि ऐसी है, तो थोड़ा और विचार कीजिये, और तुरन्त तुम्हारा ईश्वर का सामना करा दिया जायगा। आप जानते हैं कि आप को वचन दिया गया था—"अपने को जानो, ठीक पता कागज पर लिख दो और तुरन्त ईश्वर से नुम्हारी भेंट करा दी जायगी।"

अब लड़के को अर्थात् राजकुमार को यही आशा थी कि चूंकि मैं अपने को जान गया हूँ, मुझे पता लग गया है कि मैं कोई निर्विकार वस्तु हूँ, कोई चीज निरन्तर हूँ, कोई ऐसी वस्तु हूँ जो कभी नहीं सोती, अब मुझे ईश्वर को जानना चाहिए। कुमार से कहा गया, "भाई! देखो, यहाँ पर ये पेड़ बढ़ रहे हैं। इस पेड़ को जो शक्ति बढ़ा रही है क्या वह उस शक्ति से भिन्न है जो उस वृक्ष को बढ़ा रही है?" उसने कहा, "नहीं, नहीं, निश्चय एक ही शक्ति है"। अच्छा जो शक्ति इन सब पेड़ों को बढ़ा रही है वह क्या उस शक्ति से भिन्न है जो पशुओं के शरीरों को बढ़ाती है? उसने कहा, "नहीं, नहीं, भिन्न नहीं हो सकती, एक ही शक्ति है"। अब, क्या वह बल, वह शक्ति जो तारों को चला रही है, उस शक्ति से भिन्न है जो नदियों को बहा रही है? उसने कहा, "उसमें भिन्नता नहीं हो सकती, एक ही शक्ति होनी चाहिए"। अच्छा, जो शक्ति इन वृक्षों को बढ़ा रही है; उस शक्ति से भिन्न नहीं हो सकती जो तुम्हारे शरीर या केशों को बढ़ाती है। प्रकृति की वही सर्वव्यापी शक्ति, जो तारों को चमकाती है, तुम्हारी आँखों को चमकाती है; वही

शक्ति, जो उस शरीर के बालों की वृद्धि वा उत्पत्ति का कारण है, जिसे तुम मेरा कहते हो, वही शक्ति प्रत्येक और सब की नाड़ियों में रक्त दौड़ाती है। सचमुच, तब तुम और क्या हो? क्या तुम वही शक्ति नहीं हो, जो तुम्हारे बालों को बढ़ाती है, जो तुम्हारे रक्त को तुम्हारी नाड़ियों में बहाती है, जो तुम्हारे भोजन को पचाती है? क्या तुम वह शक्ति नहीं हो? सचमुच तुम वही शक्ति हो, जो बुद्धि और मन के परे है। यदि ऐसा है तो तुम वह शक्ति हो, जो सम्पूर्ण विश्व की शक्ति का शासन कर रही है। वही आत्मदेव तुम हो, वही ईश्वर तुम हो, वही अज्ञेय, वही तेज, शक्ति, तत्त्व, जो जी चाहे कहलो, वही दिव्य-शक्ति वही सर्व रूप, जो सर्वत्र विद्यमान् है, वही तुम हो।

बालक चकित होकर बोला, "वास्तव में, वास्तव में मैंने ईश्वर को जानना चाहा था। मैंने सवाल किया था कि ईश्वर क्या है, और मुझे पता लग गया कि मेरा अपना आप, मेरी सच्ची आत्मा ईश्वर है। मैं क्या पूछ रहा था, मैंने क्या पूछा था, कैसा बेहूदा प्रश्न मैंने किया था। मुझे अपने ही को जानना था, मुझे जानना था कि मैं कौन हूँ, और ईश्वर का पता लग गया। इस तरह ईश्वर ज्ञात हो गया।"

इस सच्चाई के अनुभव करने के मार्ग में एक यही कठिनाई है कि लोग बच्चों का स्वाँग (अभिनय) करते हैं। आप जानते हैं, बच्चे कभी-कभी किसी विशेष प्रकार की थाली पर मुग्ध हो जाते हैं, और तब तक कोई पदार्थ भोजन करना नहीं चाहते जब तक उनकी प्रिय थालियों में वह चीज नहीं परोसी जाती। वे यही कहेंगे, "मैं अपनी थाली में खाऊँगा, मैं अपनी रकाबी में खाऊँगा, दूसरी किसी थाली में मैं कोई वस्तु ग्रहण न करूँगा"। ऐ बच्चो! देखो, केवल यही एक विशेष रकाबी तुम्हारी नहीं, घर की सब तश्तरियाँ तुम्हारी ही हैं, सब सुनहली थालियाँ तुम्हारी हैं। यह एक भ्रम है

यदि इस संसार में लोग अपने को जानलें, तो वे अपने वास्तव स्वरूप को सर्वशक्तिमान ईश्वर वा अनन्त शक्ति को पालें। किन्तु वे तो अपनी इस विशेष थाली अर्थात् इस सिर वा दिमाग पर लट्टू हो गये हैं। मस्तिष्क के द्वारा जो कुछ होता है, केवल वही मेरी करनी है। मन और बुद्धि के द्वारा जो कुछ होता है वह तो मेरा है और शेष सब मैं नहीं अपना सकता; बाकी सब मैं अस्वीकार करता हूँ। मैं केवल वही ग्रहण करता हूँ, जो इस विशेष थाली में मुझे परसा जाता है। यहीं से स्वार्थ शुरू होता है। वे सब कुछ इसी थाली के द्वारा करना चाहते हैं। और इस थाली द्वारा की हुई वस्तु को अपनी समझते हैं, और हर एक चीज इसी छोटी सी थाली के आस पास जमा करना चाहते हैं, जिसे वे विशेषत: अपनी बताते हैं और जिससे उन्होंने अपनी एकता मानली है। संपूर्ण स्वार्थपरता तथा समस्त चिंता और विपत्ति का यही कारण है। इस मिथ्या बिचार से पीछा छुटाओ, अपने सच्चे स्वरूप को सर्वरूप अनुभव करो, इस स्वार्थमय अहंकार से ऊपर उठो, इसी क्षण तुम आनन्द पाओगे, सम्पूर्ण विश्व से तुम्हारी एकता हो जायगी। यह उसी ढंग की भूल है जैसी राजकुमार ने की थी, जब जकड़नेवाला प्रश्न कुमार से किया गया था "तुम्हारा स्थान कहाँ है ?" और उसने राजधानी बताई थी, "मेरा स्थान है"। ऐ लड़के ! राज्य की राजधानी ही तेरा एक मात्र स्थान नहीं है। सम्पूर्ण राज्य अर्थात् समग्र देश तुम्हारा है। तुम उस प्रधान नगर में, अर्थात् राजधानी में रहते हो, किन्तु वह राजधानी ही तुम्हारा एक मात्र स्थान नहीं है, समग्र राज्य तुम्हारा है। यह सुन्दर भू-भाग, ये सुहावने दृश्य, हिमालय की यह महान् रचना, ये सब तुम्हारे ही हैं, न कि केवल वह विशेष छोटा नगर।

लोगों से यही भूल होती है। यहीं बुद्धि या दिमाग तुम्हारे वास्तविक

स्वरूप अर्थात् आत्मा का मुख्य नगर अथवा राजधानी कहा जा सकता है। किन्तु तुम्हें कोई अधिकार नहीं है कि केवल इसी को तुम अपना कहो और अन्य सब को पराया। मस्तिष्क रूपी यह छोटी सी राजधानी अर्थात् मन या बुद्धि की यह राजधानी मात्र ही तुम्हारी नहीं है। विशाल संसार अर्थात् सम्पूर्ण विश्व तुम्हारा है। समस्त सूर्य्य, तारे, चन्द्रमा, भूमि, ग्रह तथा आकाश-गंगा (milky ways) ये सब तुम्हारे हैं। इसका अनुभव करो। अपना जन्म-अधिकार अभी प्राप्त करो। सब चिन्ता, सब बिपत्ति दूर हो जायगी।

लोग स्वाधीनता की चर्चा करते हैं। लोग मुक्ति की चर्चा करते हैं। पहले यह तो देखो कि वह है क्या, जो तुम्हें बाँधे हुए है? यदि तुम स्वाधीन होना चाहते हो, यदि तुम मुक्ति पाना चाहते हो, तो तुम्हें जानना चाहिए कि तुम्हारे बन्धन का कारण क्या है। यह ठीक कहानी के बन्दर की सी बात है। भारत में बन्दर बड़े बिलक्षण ढंग से पकड़ा जाता है। एक संकरे मुँह का बरतन जमीन में गाड़ दिया जाता है और उसमें कुछ मेवाजात और बन्दरों के रुचिकर अन्य खाद्य पदार्थ रख दिये जाते हैं। बन्दर आते हैं और भाँड़े में अपने हाथ डालकर उनको मेवों से भर लेते हैं। इससे मुट्ठी मोटी हो जाती है और फिर निकाले नहीं निकलती। इसी से बन्दर पकड़ जाता है, वह निकल नहीं सकता। अद्भुत रीति से अर्थात् विचित्र उपाय से बन्दर पकड़ा जाता है।

हम पूछते हैं, तुम्हें पहले कौन बाँधता है? तुमने स्वयं अपने को दासता और बन्धन के अधीन किया है। यह समग्र विस्तृत सुन्दर बन है, और सम्पूर्ण विश्व के इस महान् सुंदर बन में एक संकरे गले का बरतन मिलता है। संकीर्ण गले का यह बरतन क्या चीज है? यह तुम्हारा मस्तिष्क है। यह छोटा दिमाग ही संकरे मुँह का बरतन है। इसमें कुछ बादाम आदि मगजियात हैं और लोगों ने इनको पकड़

लिया है। दिमाग की आढ़त या इस बुद्धि के माध्यम द्वारा किया हुआ सब कुछ मनुष्य अपना मान लेता है। हर एक कहता है, "मैं मन हूँ।" हर एक मनुष्य ने कार्यतः अपने को मन मान लिया है। "मैं मन हूँ, मैं बुद्धि हूँ"। और संकरे मुख के बरतनों के इन मेवों को वह मजबूत पकड़ता है। यही तुम को गुलाम बनाता है। यही तुमको चिन्ता, भय, प्रलोभनों, और सब तरह के क्लेशों का दास बनाता है। यही तुमको बाँधता है। इस संसार में सब दुःखों का कारण यही है। यदि तुम मुक्ति चाहते हो, यदि तुम स्वाधीनता चाहते हो, तो मुट्ठी खोल दो, अपने हाथ खाली कर दो। सारा जंगल तुम्हारा है, तुम हर एक वृक्ष पर कूद फांद सकते हो और जंगल की सब वस्तुयें अर्थात् जंगल के सब फल, और अखरोट खा सकते हो। ये सब तुम्हारे हैं। सम्पूर्ण संसार तुम्हारा है। इस स्वार्थपूर्ण अज्ञानता को छोड़ दो, और तुम स्वतत्र हो, अपने त्राता आप ही हो।

Making a famine where abundance lies
(Is it fair? No, it is not fair, it is not becoming)
Making a famine where abundance lies.
This thy foe, to thy sweet self so cruel.
Should not be so, should not do this,
Within thine own bud buriest thou content
Thou makest waste and niggarding,
Be not niggardly, be not miserly.

It is niggardliness to give away all this property and confine thyself unto the few things in this little brain only.

जहाँ प्रचुरता है वहाँ दुर्भिक्ष डालते हो।
(क्या यह न्याय है? नहीं, यह न्याय नहीं है, यह उचित नहीं है।)

जहाँ प्रचुरता है वहां दुर्भिक्ष डालते हो, यही (स्वार्थपूर्ण अज्ञान) तेरा शत्रु है, तेरे मधुर आत्मा के प्रति इतना निष्ठुर है; ऐसा न होना चाहिए, ऐसा न करना चाहिए। अपनी ही कली के भीतर तुपकर तू संतुष्ट रहता है। तू गंवाता है, और वह भी कंजूसी से। कंजूस मत बन, लोभी मत बन। (यह सब मालमता दे देना और इस छोटी सी बुद्धि की कुछ चीजों से अपने को परिमित कर लेना कंजूसी है।)

यदि सब से अपनी एकता का तुम अनुभव कर लो, तो तुम देखोगे कि तुम्हारा यह मस्तिष्क अनन्त शक्तिशाली हो जायगा। यह वह बात है जो सारे संसार से तुम्हारी पूर्ण अभेदता कर देगी।

(1) "Oh, we can wait no longer,
We too take ship, O soul.*
Joyous we too launch out on trackless seas
Fearless for unknown shores on waves of ecstasy to sail
Amid the wafting winds, (thou pressing me to thee, I thee to me, O soul).

(2) Carolling free, singing our song of God
Chanting our chant of pleasant exploration
With laugh and many a kiss,
(Let others deprecate, let others weep for sin, remorse, humiliation)
O soul, thou pleasest me, I thee.

(१) "ओह, अब हम नहीं ठहर सकते; ऐ बुद्धि हम भी जहाज पर सवार होते हैं।

*Here the word soul means intellect.

ऐ बुद्धि ! तू अपने अंक में मुझको भरती हुई, और मैं अपने में तुझे भरता हुआ निर्भीकता से अज्ञात तटों की ओर खेने को प्रचण्ड वायु के बीच, हर्षोन्माद की लहरों पर, सहर्ष हम भी पथहीन समुद्र में रवाना होते हैं।

(२) निश्चिन्तता से गायन करते हुए, ईश्वर का अपना गीत गाते हुए, सुखमय अन्वेषण की तानें अलापते हुए, तू हंसी और अनेक चुम्बनों के सहित, ऐ बुद्धि ! तू मुझको आनन्द देती है, मैं तुझको देता हूँ। (दूसरों को क्षमा-प्रार्थना करने दो, दूसरों को पाप अनुताप और अपकर्ष के लिए रोने दो)।

(3) Ah more than any priest, O soul, We too believe in God,
But with the mystery of God we dare not dally
O soul, thou pleasest me, I thee,
Sailing these seas or on the hills, or waking in the night,
(4) Thoughts, silent thoughts of Time and Space and Death, like waters flowing.
Bear me indeed as through the regions infinite.
Whose air I breathe, whose ripples hear, leave me all, over,
Bathe me, O God, in thee, mounting to thee
I and my soul to range in range of thee.
(5) O thou transcendent,
Nameless. the fibre and the breath;
Light of the light. shedding forth universes, thou centre of them,
Thou mightier centre of the true, the good, the loving,
Thou moral, spiritual fountain—affection's source thou reservoir,

(O pensive soul of me—O thirst unsatisfied—waitest not there ?
Waitest not happy for us somewhere there the Comrade perfect ?)
Thou pulse—thou motive of the stars, suns, systems,
That, circling, move in order, safe, harmonious.
Athwart the shapeless vastness of Space,
How should I think, how breathe a single breath, how speak, if, out of myself,

(३) ऐ बुद्धि, हम भी किसी धर्माचार्य से अधिक ईश्वर में विश्वास रखते हैं, किन्तु ईश्वर के रहस्य के साथ विलास करने का हमें साहस नहीं। ऐ बुद्धि ! तू मुझको आनन्द देती है, मैं तुझको।

(४) इन समुद्रों में खेते हुए, या पहाड़ों पर चलते हुए, या रात में जागते हुए, जल की तरह बहते हुए विचार अर्थात् काल-देश और मृत्यु के मौन विचार, वास्तव में मानो मुझे ऐसे अनन्त प्रदेशों के बीच में ले जाते हैं, जिनकी पवन का मैं श्वास लेता हूँ, जिस की सनसनाहट मैं सुनता हूँ, और जो पवन मेरे सारे अंगों को धो डालती है। हे भगवन् ! मुझे और मेरी बुद्धि को तू अपनी श्रेणी में मिलने दे। और जब मैं आपकी ओर बढ़ूँ तो मुझे तू अपने में नहाने दे या डुबकी लगाने दे।

(५) हे भगवन् ! तू सर्वोच्च, बेनाम, श्वास और नाड़ी, प्रकाश का भी प्रकाश, विश्वों को रचता हुआ उनका केन्द्र है, और तू सत्य, धर्म और प्रेम का भी महान् केन्द्र है। तू सभ्यता और आध्यात्मिकता का स्रोत वा प्रेम का मूल और भण्डार है।

ऐ मेरी चिन्ताग्रस्त बुद्धि ! ऐ बेबुझी प्यास, क्या तू वहाँ राह नहीं देख रही है ? क्या कहीं पर बहाँ हमारा पक्का साथी (निजात्मा) सहर्ष हम लोगों की राह तो नहीं देख रहा है ?

तू नाड़ी है अर्थात् तू विश्व की, ब्रह्माण्ड की तथा उन सूर्यों, नक्षत्रों और मंडलों की प्रेरक है, जो चक्कर काटते हुए आकाश के निराकार और अनन्त विस्तारों के आर-पार क्रमपूर्वक, सुरक्षित और एक ताल घूमते हैं। यदि मैं अपने से बाहर हो जाऊँ तो फिर मैं कैसे विचार सकूं, बोल सकूँ और एक श्वास तक भी ले सकूँ।

(6) I could not launch, to those, superior universes ?
Swiftly I shrivel at the thought of God,
At Nature and its wonders, Time and Space and Death,
But that I, turning, call to thee, O soul, thou actual me,
And lo, thou gently masterest the orbs,
Thou matest Time, smilest content at Death,
And fillest, swellest full the vastnesses of Space,

(7) Greater than stars or suns
Bounding, O soul, thou journeyest forth :
What love other than thine and ours could wider amplify ?
What aspirations, wishes, outvie thine and ours, O soul ?
What dreams of the ideal ? what plans of purity, perfection, strength ?
What cheerful willingness for other's sake to give up all ?
For other's sake to suffer all ?

(8) Reckoning ahead, O soul, when thou, the time achiev'd,

The seas all cross'd, weather'd the capes, the voyage done,
Surrounded, copest, frontest God yieldest, the aim attain'd,
As fill'd with friendship, love complete, the Elder Brother found,
The Younger melts in fondness in his arms.

(६) मैं उन महान् विश्वों में घुस नहीं सका। ईश्वर का ध्यान होते ही, प्रकृति और उसके चमत्कारों पर, देश और काल तथा मृत्यु पर, मैं जी में सिकुड़ता हूँ; पर ऐ बुद्धि, जो कि तू वास्तविक 'मैं' है, वही 'मैं' (जब) फिर कर तुझे पुकारती है, तब देख, तू सहज ही में ग्रहमण्डलों की मालिक बन जाती है, तू समय की संगिनी बन जाती है, संतोष से मृत्यु पर मुस्कराती है, और आकाश के अनन्त विस्तारों को ऊपर तक लबालब भर देती है?

(७) नक्षत्रों या सूर्यों से अधिक फुदकती हुई, ऐ बुद्धि! तू आगे यात्रा करती है। मेरे और तेरे प्रेम से अधिक दूसरा कौन प्रेम विशेष विस्तार से फैल सकता है? ऐ बुद्धि! तेरी और मेरी से बढ़कर कौन सी आकाक्षायें व अभिलाषायें हो सकती हैं? आदर्श के कौन से स्वप्न; पवित्रता, सिद्धि, शक्ति की कौन सी तदबीरें; दूसरों के लिए प्रसन्नता पूर्वक सर्वस्व त्याग की कौन सी हर्ष-पूर्वक इच्छायें, और दूसरों के लिए सब कुछ सहने की कौन सी आकांक्षायें, मेरी और तेरी से बढ़ी - चढ़ी हो सकती हैं?

(८) आगे का खयाल करते हुए, जब तू ऐ बुद्धि; समय पाकर, सब समुद्र पार कर लेगी, अन्तरोपों (Eahes) की सब दिक्कतें झेल जायगी, और यात्रा हो चुकेगी; जब ऐ बुद्धि! (चारों ओर से ईश्वर से) घिरी हुई, तू सामना करती हुई ईश्वर के सम्मुख होती अपने को

अर्पण कर देगी, तब तूं लक्ष्य को ऐसे प्राप्त होगी जैसे सौहार्द और प्रेम से परिपूर्ण बड़े भाई के मिल जाने पर छोटा भाई उसकी स्नेहमयी गोद में पिघल जाता है।

(9) Passage to more than India !
Are thy wings plumed indeed for such far flights ?
O soul, voyagest thou indeed on voyage like those ?
Disportest thou on waters such as those ?
Soundest below the Sanskrit and the Vedas ?
Then have thy bent unleas'd.

(10) Passage to you, your shores, ye aged fierce enigmas !
Passage to you, to mastership of you, ye strangling problems,
You, strew'd with the wrecks of skeletons, that, living, never reach'd you.

(11) Sail on, march on to the real Self; get rid of all this superstition, this superstition of the body, Get rid of this hypnotism of this little body; you have hypnotized yourself into this brain or body. Get rid of eternity, the reality, the true Self; passage to more than India.

(12) Passage to more than India !
O Secret of the earth and sky !
Of you O waters of the sea ! O winding creeks and rivers !
Of you O woods and fields ! of you strong mountains of my land !
Of you O Prairies ! of you gray rocks !
O morning red ! O clouds ! O rain and snows !
O day and night, passage to you !

(९) (परम प्रिय) भारत से भी अधिक [दूर] का मार्ग ! क्या तेरे पंख सचमुच ऐसी लम्बी उड़ानों के योग्य हैं ? ऐ बुद्धि ! ऐसी लम्बी यात्रायें भी क्या सचमुच तू करती है ? ऐसे जलों पर भी तू बिहार करती है ? क्या तू संस्कृत और वेदों के नीचे से ध्वनि उठाती है ? तो ले, अपने बन्धन का पट्टा खारिज करवा ले।

(१०) तेरे लिए मार्ग है, तट तेरे हैं, ऐ पुरानी भयंकर पहेलियो ! ऐ गलाघोटू समस्याओ ! तुम्हें बूझने के लिए अब रास्ता साफ है। जीते जी जो तुमको कभी न पहुँच सके, उनके कंकालों (ढाँचों) के टुकड़ों वा ढेरों से तुम ढकी हुई हो।

(११) खेते चलो, बढ़े चलो अपने वास्तविक स्वरूप तक। इस संपूर्ण अन्ध-विश्वास को, शरीर के इस अन्धविश्वास को छोड़ो। इस क्षुद्र शरीर के जादू से पिंड छुड़ाओ। तुमने अपने को इस बुद्धि या शरीर के मोह में फँसा लिया है। उससे पीछा छुडाओ; खेते चलो; नित्यता, वास्तविकता अर्थात् सच्ची आत्मा की ओर बढ़े चलो। भारत से भी अधिक दूर का मार्ग लो।

(१२) ऐ भारत से भी अधिक दूर के रास्ते ! ऐ भूमि और आकाश के रहस्य। ऐ समुद्र के जल ? ऐ घूमती हुई खाड़ियों और नदियों ! ऐ बनो और खेतो ! ऐ मेरे देश के बिशाल पर्वतों ! ऐ पांडुवर्ण चट्टानो ! ऐ भारी-भारी भूधरो ! ऐ आरक्त प्रातःकाल ! ऐ वृष्टि और हिम ! ऐ दिन और रात ! तुम्हारे रहस्य का मार्ग साफ है।

(13) Rise above the body, and you become all these, you get a passge unto all these. All these you realise yourself to be.

(14) O Sun and Moon and all you stars ! Sirius and Jupiter !

Passage to you !
Passage, immediate passage ! the blood burns in my veins !
Away, O soul ! hoist instantly the anchor !
(15) Cut the hawsers—haul out—shake out every sail !
Have we not stood here like trees in the ground long enough ?
Have we not grovel'd here long enough, eating and drinking like mere brutes ?
Have we not darken'd and dazed ourselves with books long enough ?
(16) Sail forth—steer for the deep waters only,
Reckless O soul, exploring, I with thee, and thou with me
For we are bound where manner has not yet dared to go.
And we will risk the ship, ourselves and all.
(17) O my brave soul !
O farther, farther sail !
O daring joy, but safe ! are they not all the seas of God ?
O farther, farther, farther, sail !

(१३) शरीर से ऊपर उठो, और तुम ये सब हो जाते हो, तुम्हें इन सब के लिए रास्ता मिल जाता है। अनुभव करो कि तुम स्वयं ये सब हो।

(१४) ऐ चन्द्र और सूर्य और समस्त नक्षत्रो ! वृहस्पति और लुब्धक ! तुम को पहुँचने का मार्ग, अर्थात् तुम्हें तुरंत पहुँचने का मार्ग साफ है। रक्त मेरी नसों में उबल रहा है। ऐ बुद्धि तुरन्त लंगर उठाकर चल दे !

(१५) (इस शरीर रूपी जहाज के) रस्से काट डालो, (इसे) बाहर निकाल दो और हर एक बादबान खोल दो। भूमि पर वृक्षों की तरह क्या काफी देर तक हम यहाँ नहीं खड़े रहे ? केवल पशुओं के समान खाते-पीते क्या हम यहाँ काफी देर तक रेंगते नहीं रहे ? क्या हमने देर तक अपने को पुस्तकों से चौंधिया कर अधिक अन्धकारमय नहीं बना लिया है ?

(१६) खेते चलो केवल गहरे पानी के लिए नाव बढ़ाओ। निश्चिन्तता से ऐ बुद्धि ! मैं तेरे साथ, और तू मेरे साथ अन्वेषण करते हुए बढ़ो। क्योंकि हमारा लक्ष्य वह है जहाँ जाने का किसी नाविक ने अभी तक साहस ही नहीं किया।

अपने को, सर्वस्व को और जहाज को हम जोखिम में डालेंगे।

(१७) ऐ मेरी वीर बुद्धि ! ओ, आगे खेओ ! ऐ साहसी किन्तु सुरक्षित आनन्द ! क्या वे सब समुद्र ईश्वर के नहीं हैं ? ओ आगे, आगे और आगे खेओ।

ॐ ! ॐ ! ॐ !

पाप-आत्मा से उसका संबंध

[रविवार ता० १६ नवम्बर सन् १९०२ को सेन फ्रांसिसको, अमरीका में दिया हुआ व्याख्यान।]

बहनो और भाइयो !

पिछले सप्ताह में जो चार व्याख्यान दिये हैं उन्हीं के सिलसिले में आज का विषय है। जिन्होंने पिछले व्याख्यान सुने हैं वे इसे खूब समझ सकेंगे।

आज के व्याख्यान में राम पाप की व्याख्या नहीं करेगा, अथवा पाप कौन लाया ? कहाँ से यह आया ? या संसार में यह पाप क्योंकर है ? कुछ लोग दूसरों से अधिक पापी क्यों होते हैं ? कुछ लोगों में दूसरों से लालच क्यों अधिक होता है ? और दूसरों में लालच की अपेक्षा क्रोध क्यों अधिक होता है ? इत्यादि प्रश्नों में न पड़ेगा। यदि समय मिला तो इन प्रश्नों का विचार किसी दूसरे व्याख्यान में किया जायगा।

पाप शब्द का व्यवहार उसके साधारण अर्थ में आज हम कर रहे हैं, अथवा उस अर्थ में जिस अर्थ को समस्त ईसाई संसार ग्रहण करता है।

इस संसार में आप कुछ अति विचित्र घटना, अत्यन्त विलक्षण वा अजीब घटना देखेंगे। आप इस संसार में कुछ ऐसी बातें देखेंगे जो तत्वज्ञानियों की चतुरता को मात करती हैं ; और आपको कुछ ऐसे नैतिक और धार्मिक तथ्य दिखाई पड़ेगे जो वैज्ञानिकों को उद्विग्न करनेवाले हैं। वेदान्त के प्रकाश में अर्थात् वेदान्त के विचारानुसार आज इनकी व्याख्या की जायगी। पाप की अद्भुत घटना भी इन्हीं

बिचित्र तथ्यों के अन्तर्गत है। यह कैसी बात है कि हर एक मनुष्य जानता है कि इस संसार में जिसने जन्म लिया है वह मरेगा अवश्य। प्रत्येक पेड़ जो पृथ्वी पर दिखाई देता है वह एक दिन अवश्य नष्ट होगा। प्रत्येक पशु जो पृथ्वी पर दिखाई देता है एक दिन नष्ट अवश्य होगा। प्रत्येक मनुष्य मरेगा अवश्य; हर आदमी यह जानता है। बड़े-बड़े सूरमा, सिकन्दर, नेपोलियन, वाशिंगटन, वेलिंगटन, आदि जो लाखों मनुष्यों की मौत के कारण हुए, वे सब मरे। ये सब के सब, जिनके हाथों से नर संहार और रक्तपात वर्णन से बाहर हुए, मृत्यु को प्राप्त हुए। वे भी मरे, और मरों को जीवित करने वाले भी मरे। हम जानते हैं, शरीर नश्वर है। हर एक मनुष्य यह जानता है; परन्तु व्यवहार में कोई भी इस पर विश्वास नहीं करता। बुद्धि से तो वे इसे स्वीकार करते हैं; परन्तु व्यावहारिक विश्वास इस तथ्य में नहीं दिखलाते। यह क्या बात है? जो सत्तर वर्ष का हो चुका है, जो नब्बे वर्ष का होने वाला है, ऐसे बूढ़े मनुष्य के पास जाओ और तुम देखोगे कि वह भी अपने सम्बन्धों की फैलावट जारी रखना चाहता है, वह हमेशा इस संसार में रहना चाहता है, मृत्यु को परित्याग करना चाहता है, और व्यावहारिक जीवन में अपनी मौत की बात कभी नहीं सोचता। वह अपनी सम्पत्ति बढ़ाना चाहता है, वह अपने नातेदारों और मित्रों का मण्डल बढ़ाना चाहता है, वह अपने शासन में अधिकाधिक सम्पत्ति चाहता है। वह जीते रहने की आशा करता है। व्यवहारत: मृत्यु में उसका कोई विश्वास नहीं है; और इसके सिवाय, मृत्यु का नाम ही उसके सारे शरीर में सर की चोटी से पैर के अँगूठे तक, कँपकपी पैदा कर देता है। मृत्यु के नाम से सारा शरीर थरथराने लगता है। यह क्या बात है कि मनुष्य मृत्यु के खयाल को नहीं सह सकता, मृत्यु के नाम को नहीं सह सकता, और साथ ही साथ

जानता है; कि मौत अवश्यम्भावी है। यह क्या बात है? यह एक नियम विरोध है, एक प्रकार का असत्याभास वा उलटा आभास है। इसे समझाओ। मनुष्यों को मृत्यु में व्यावहारिक विश्वास क्यों नहीं होता, यद्यपि उसका बौद्धिक ज्ञान उन्हें होता है? वेदान्त इसे इस प्रकार समझता है:—"मनुष्य में असली आत्मा है जो अमर है; वहाँ वास्तविक आत्मा है जो नित्य, निर्विकार, आज, कल और सदा एकरस है। मनुष्य में कोई ऐसी वस्तु है जो मृत्यु को नहीं जानती, किसी प्रकार के परिवर्तन को नहीं जानती। मृत्यु में व्यावहारिक अविश्वासका कारण मनुष्य में इस वास्तविक आत्मा की उपस्थिति है और यही वह वास्तविक नित्य तथा अमर आत्मा है जो अपने अस्तित्व को मृत्यु में लोगों के व्यावहारिक अविश्वास द्वारा सिद्ध करता है।"

अब हम एक दूसरी विचित्र घटना पर आते हैं, अर्थात् स्वाधीन होने की अभिलाषा की घटना पर। इस संसार में प्रत्येक प्राणी स्वतंत्र होना चाहता है। कुत्ते, शेर, चीते, पक्षी और मनुष्य को भी स्वाधीनता मे प्रेम है। स्वाधीनता के ख्याल से सार्वभौम राष्ट्र खून गिराते हैं और मानव जाति के रक्त से भूमि तर करते हैं; पृथ्वी का सुन्दर सुख स्वाधीनता के नाम पर हत्याकाण्ड से और रक्त से लोहित किया जाता है। ईसाई, हिन्दू, मुसलमान सबने अपने सामने एक लक्ष्य रक्खा है। वह क्या है? मुक्ति, जिसका छोटा सा अर्थ आजादी है।

भारत में किसी मन्दिर में एक मनुष्य मिठाई बाँटता देखा गया। किसी हर्ष और अभ्युदय के समय भारतवासी गरीबों को मिठाई और दूसरी चीजें बाँटते हैं। किसी ने आकर पूछा, इस प्रसन्नता का कारण क्या है? मनुष्य ने कहा कि मेरा घोड़ा खोगया। चकित होकर उस ने कहा, "वाह! तुम्हारा घोड़ा खो गया और तुम आनन्द मना रहे हो"? मनुष्य ने कहा, "मेरी बात का उलटा अर्थ न समझो। घोड़ा

तो मैंने खो दिया, परन्तु सवार को बचा लिया है। चोरों के एक दल ने मेरा घोड़ा चुरा लिया। जिस समय घोड़ा टहलाया गया था उस पर कोई सवार न था। यदि मैं घोड़े पर सवार होता तो शायद मैं भी चुरा लिया जाता। धन्यवाद है कि घोड़े के साथ मैं नहीं चुरा लिया गया"। लोग जी खोल कर हँसे। वाह, कैसा नादान आदमी है!

भाइयो और बहनो! यह कहानी हास्यजनक जान पड़ती है परन्तु हर एक को इसे अपने पर घटा कर देखना चाहिए कि वह इस मनुष्य से भी अधिक बेढंगा बर्ताव कर रहा है या नहीं। "उसने घोड़ा खो दिया, किन्तु अपने को बचा लिया।" परन्तु हजारों, नहीं लाखों मनुष्य क्या कर रहे हैं? वे घोड़े को बचाने की चेष्टा कर रहे हैं और सवार को खो रहे हैं। यह कितनी बुरी बात है। इस प्रकार जब उसने घोड़े को खो दिया और सवार को बचा लिया तो उसके लिए आनन्द मनाने का अवसर तो था ही। सभी जानते हैं कि असली आत्मा, या वास्तविक स्वरूप 'अहं' अथवा जीवात्मा का सूक्ष्म-शरीर से वैसा ही सम्बन्ध है जैसा सवार या घोड़े वाले का घोड़े से। किन्तु किसी से भी जाकर उसके वास्तविक स्वरूप तथा उसके विषय में पूछिये:—"तुम्हारा स्वरूप क्या है और तुम क्या करते हो?" उत्तर मिलेगा, "मैं अमुकामुक महाशय हूँ। मैं फलां फलां कार्यालय में काम करता हूँ"। ये सब लक्षण और उत्तर केवल स्थूल-शरीर से सम्बन्ध रखते हैं। अर्थात् ये ऐसे उत्तर हैं, जो असंगत हैं। हम पूछते हैं, "तुम कौन हो, तुम क्या हो?" और उसके उत्तर से उसकी वास्तविकता पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। यह लक्ष्य से बाहर है, प्रसंग से संगत नहीं रखता। हम उसके स्वरूप अर्थात् आत्मा के सम्बन्ध में प्रश्न करते हैं और वह हमें घोड़े की बात बता रहा है। हम सवार का हाल जानना चाहते हैं, और वह प्रश्न को टालकर ऐसी बातें बताता है, जो बिलकुल पूछी नहीं गई थीं।

क्या हम घोड़े ही को सवार नहीं समझ रहे हैं ? घोड़ा खो गया है, अब गुल गपाड़ा मचाना चाहिए, खो गया ! खो गया ! ! खो गया ! ! ! समाचार पत्रों में छपवा देना चाहिए, खोगया ! खोगया ! ! खोगया ! ! ! क्या खोगया ? घोड़ा ? नहीं, घोड़ा नहीं खोगया है । हर एक घोड़े की बात कहता है । शरीर के लक्षण, चिन्ह और हाल सब कहने को तैयार हैं । खोई हुई चीज है घोड़सवार, खोई हुई वस्तु है आत्मा अर्थात् वास्तविक स्वरूप, सार पदार्थ, जीवात्मा । महान् आश्चर्य है !

सच्चे स्वरूप, सवार अर्थात् वास्तविक आत्मा का हम कैसे पता लगावें और पावें ? गत सप्ताह के व्याख्यानों में प्रायः हर दिन इसी प्रश्न के उत्तर दिये गये । आज हम एक दूसरी ही विधि से अर्थात् पाप की विचित्र घटना से इस प्रश्न का उत्तर देंगे । पाप का मूल क्या है ? पाप ने इस संसार में कैसे प्रवेश किया ? जो उत्तर दिया जायगा वह उलटा समझ पड़ेगा, विलक्षण व चकित करने वाला समझ पड़ेगा । किन्तु चकित मत होइये । देखने में यह आश्चर्यजनक उत्तर भी स्वयं आपकी बाइबिल के उपदेशों से सर्वथा संगत सिद्ध किया जा सकता है—जिस बाइबिल को यूरोपीय लोग उस तरह नहीं समझ सकते जिस तरह भारतवासी ; क्योंकि ईसा एशिया का है, और यह भी दिखाया जा सकता है कि वह भारत का भी है । बाइबिल के बहुत से रूपकों और अलंकारों की हिंदू शास्त्रों में बारम्बार आवृत्तियाँ हुई हैं । इससे हिन्दू वा एशिया के लोग, उस प्रकार की लेख-शैली के अभ्यासी होने के कारण, पाश्चात्य लोगों की अपेक्षा बाइबिल को अधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं । और इसलिये अभी जो उत्तर दिया जायगा वह जिन लोगों को अपने पोषित अथवा अति प्रिय विचारों और अति पूज्य भावों के सर्वथा विपरीत और आश्चर्य जनक समझ पड़े, उन्हें धीरज रखना चाहिए, क्योंकि देखने में यह

अद्भुत व्याख्या अन्त में स्वयं तुम्हारी बाइबिल के उपदेशों के विरुद्ध नहीं है। पाप की समस्या पर आने के पूर्व हम कुछ प्रारम्भिक मामलों पर विचार करेंगे।

यह कैसी बात है कि पैदा होने वाले हर एक को यद्यपि मरना पड़ेगा ही, फिर भी लोग मृत्यु का विचार कभी नहीं कर सकते? मृत्यु का विचार मात्र उनके शरीर को कँपा देता है। और उनके शिर की चोटी से लेकर पैर के अंगूठे तक थर्राहट पैदा कर देता है। हम कहते हैं, यह क्या बात है कि भूतकाल में जितने महाराजा हुए सब चल बसे, सब महात्मागण भी जो मृतकों को जीवित और उनके शरीरों को फिर उठाकर खडा करते थे, मृत्यु को प्राप्त हो गये। वे मुर्दों को जिन्दा करते थे पर उनके शरीर भी मुर्दा हो गये हैं। हम देखते हैं कि भूतकाल के सारे धनाढ्य पुरुष तथा भूतकाल के सब बलिष्ट पुरुष मर गये हैं। और बुद्धि के बिचार बिन्दु से हमें निश्चय है कि देर या सबेर हमारे शरीर अवश्य मरेंगे। तुम चाहे सत्तर वर्ष तक जीते रहो; नहीं, नहीं, उसकी दूनी, चौगुनी अवस्था तक के हो जाओ; परन्तु मरना अवश्य पड़ेगा। मौत से तुम नहीं बच सकते। यह सर्वथा निश्चित है। परन्तु महा विस्मयकर बात तो है यह कि ऐसा सब होते हुए भी कोई अमली रूप से अपनी मृत्यु पर विश्वास नहीं कर सकता। हर एक मृत्यु पर विश्वास नहीं कर सकता। हर एक मृत्यु के विचार से घृणा करेगा, मृत्यु के आने की चिन्ता को न सहन करेगा। हर एक अपने साथियों से अपने सम्बन्धों को फैलाता जाता है और अपने नातेदारों से नातेदारियाँ बढ़ाता रहता है, अपने कार्य क्षेत्र की वृद्धि का प्रसार करता रहता है, और इस तरह हर एक जिन्दगी बसर करता है, मानो मृत्यु उसे कभी न ग्रसेगी, अथवा उसकी मृत्यु होना असम्भव है। यह क्या बात है? इसका क्या कारण है? मौत का नाम किसी से सुनते

ही मनुष्य के सारे शरीर में बुखार चढ़ आता है। यह क्यों ? एक ओर तो मृत्यु का आना अटल है, दूसरी ओर हम उसके ख्याल से भी भागते हैं; ठीक ऐसे भागते हैं जैसे पक्षी अपने पंखों पर पानी पड़ते ही पानी को गिरा देता है। यह क्या बात है कि हम मृत्यु पर व्यावहारिक विश्वास कदापि नहीं कर सकते। मौत का वर्णन करने वाले गान आप भले ही गावें, परन्तु व्यवहार में मौत पर विश्वास कभी नहीं कर सकते। इसका कारण क्या है? वेदान्त इसकी व्याख्या करता हुआ कहता है कि वास्तविक कारण आपके वास्तविक आत्मा की अमरता है। आपका वास्तविक आत्मा कभी नहीं मर सकता। जिस शरीर को मरना है, जो हर क्षण मृत्यु को प्राप्त होता रहता है—मृत्यु से हमें यहाँ परिवर्तन समझना चाहिए—जो हर क्षण बदल रहा और मर रहा है, वह आपका वास्तविक आत्मा नहीं है। आप में कोई ऐसी वस्तु है, जो कभी नहीं मर सकती। इस शरीर के साथ आत्मा का, अर्थात् आपके वास्तविक स्वरूप का, जो कभी नहीं मर सकता, संयोग है। परन्तु आप कहेंगे कि व्यावहारिक जीवन में, अर्थात् दैनिक जीवन में हम यह विश्वास नहीं करते कि आत्मा कभी नहीं मरेगा, परन्तु हम यह विश्वास करते हैं कि हमारे शरीर कभी न मरेंगे—ऐसा विश्वास करते हैं कि हमारे शरीरों को अमर रहना चाहिए। हिन्दू धर्म का वेदान्त दर्शन कहता है, यद्यपि यह सत्य है कि आत्मा को नहीं मरना है और शरीर को मरना है; परन्तु भूल से आत्मा के गुण, अर्थात् वास्तविक स्वरूप या जीवात्मा का गौरव नाशवान् शरीर को प्रदान किया जाता है। इसके मूल में अविद्या है। यह विचार सार्वभौम है। यह सब कहीं अर्थात् सब देशों में वर्तमान है। और पशु-जगत् में भी यह वर्तमान है। इस विश्वास की सर्व व्यापकता को वेदान्त के सिवाय और कोई दूसरा तत्वशास्त्र नहीं समझा सकता। इस विश्वास की

सार्वभौमिकता एक तथ्य है, और यह तथ्य समझाया जाना चाहिए। जो तत्वशास्त्र प्रकृति के सब तथ्यों को नहीं समझाता, वह तत्वशास्त्र ही नहीं है। अधिकांश तत्वशास्त्रों की भाँति वेदान्त इस तथ्य को बिना समझाये नहीं छोड़ देता। कारण आन्तरिक होना चाहिए बाहरी कारणों का प्रमाण देने के दिन गये। एक आदमी गिर पड़ता है, उसके गिरने का कारण उसी के भीतर दिखाना होगा। वह कह सकता है, जमीन फिसलनी थी, या इसी तरह की कोई और बात। किन्तु कारण घटना में ही दिखाना होगा, उससे बाहर नहीं। और यदि स्वयं घटना में कारण की प्राप्ति हो सकती हो, तो बाहरी कारणों में जाने का हमें कोई अधिकार नहीं है। अमरता के अमली विश्वास को आप ऐसे कारणों से किस प्रकार समझा सकते हैं जो भीतरी हो, न कि बाहरी ? शरीर में हम ऐसी कोई बात नहीं पाते जो हमें यह विश्वास अर्थात् अमरता का विश्वास दे सके। मन में हम ऐसी वस्तु नहीं पाते, जो यह विचार देने वाली हो। मन से परे जाओ, शरीर से परे जाओ, और वेदान्त असली स्वरूप अर्थात् सच्ची आत्मा को बताता है जिसका वर्णन किसी पिछले व्याख्यानों में किया जा चुका है। वही ज्योति स्वरूप साक्षी-आत्मा अमर हैं, वह आज, कल और सदा एक रस है। 'अ-मृत्यु' में इस सार्वभौम विश्वास का कारण हमें उस (आत्मा) में मिल सकता है। और व्यावहारिक जीवन में की हुई भूल वैसी ही है, जैसी गैलीलियो के समय से पूर्व समस्त मानव जाति ने की थी। जैसे पृथ्वी की गति सूर्य को (भ्रम से) प्रदान की जाती है वैसे ही शरीर को आत्मा की दिव्य अमरता प्रदान करने में भी आप भूल करते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि अमर आत्मा और नश्वर शरीर दोनों विद्यमान हैं, और उनके साथ-साथ अज्ञान अथवा अविद्या है। यह अविद्या कहाँ से आई ? अब हम देखते हैं कि अविद्या मनुष्य में है, आत्मीय मनुष्य

में है, तथा शरीर भी मनुष्य में है। ये सब भीतरी चीजें हैं, इनमेंसे बाहरी कोई नहीं, अर्थात् इनमें से आपके विषय से बाहर कोई नहीं है। अब इनके अर्थात् शरीर, चित्त तथा अमर आत्मा और अविद्या के कार्य से शरीर की मृत्यु पर व्यावहारिक अविश्वास की घटना का अस्तित्व दर्शाया जाता है।

पुन: यह क्या बात है कि इस संसार में कोई भी स्वतंत्र नहीं हो सकता, यद्यपि हर एक अपने को स्वतंत्र समझता है, स्वतंत्रता का विचार करता है। सर्वत्र स्वतंत्रता की अत्यन्त इच्छा की जाती है। आप कहेंगे कि मनुष्य स्वाधीन है। क्या तुम में अनेक अभिलाषायें, प्रलोभन, और विकार नहीं हैं? तो फिर आप अपने को स्वतंत्र कैसे कह सकते हैं? मीठे फल या स्वादिष्ट भोजन आपको गुलाम बना सकते हैं। कोई भी चित्ताकर्षक रंग तुरन्त आपके मन को हर सकता है, मोहित कर सकता है, और आपको गुलाम बना सकता है। लौकिक अभ्युदय का कोई भी ख्याल आपको गुलाम बना सकता है, और फिर भी आप अपने को स्वतंत्र कहते हैं। जरा सूक्ष्मता से जाँच कर देखिये कि भला पूरी स्वाधीनता से आप मनमाना कोई काम कर सकते हैं? क्या यह बात नहीं है कि आपके किसी मामले में कोई गड़बड़ होते ही आपका मिजाज बेकाबू हो जाता है? आप क्रोध के गुलाम हैं, वृत्तियों के गुलाम हैं। यह क्या बात है कि वास्तव में लोग पूरे स्वतंत्र नहीं हो सकते, और फिर भी वे सदा स्वाधीनता का विचार, स्वाधीनता की बात-चीत करते रहते हैं; और स्वाधीनता उनको बड़ी मधुर है, अत्यन्त वाञ्छनीय और अति प्यारी है।

भारत में रविवार स्वतंत्रता का दिन है, और स्वतंत्रता के ख्याल द्वारा बच्चों को सप्ताह के दिनों की शिक्षा दी जाती है। हर दिन वे अपनी माताओं से पूछते हैं, आज कौन दिन है? वे उनको बताती हैं,

आज सोम, मंगल या बुध है। फिर वे अपने पोरों पर मंगल, बुध इत्यादि गिनना शुरू करते हैं। अरे! इतवार कब आवेगा?

पृथ्वीतल पर इतना खून क्यों बहाया जाता है? स्वतंत्रता, स्वाधीनता के विचार के कारण। वह कौन सा विचार था जिसकी प्रेरणा से अमेरिकनों ने उससे जिसको वे अपनी मातृभूमि कहा करते थे, अपना सम्बन्ध तोड़ लिया? यह क्या था? स्वाधीनता का विचार। प्रत्येक धर्म का उद्देश्य क्या है? हमारी संस्कृत भाषा में मोक्ष शब्द है, जिसका अर्थ है मुक्ति, स्वाधीनता, स्वतंत्रता। अरी स्वाधीनता! स्वाधीनता!! स्वाधीनता!!! प्रत्येक मनुष्य इस मधुर स्वाधीनता का भूखा और प्यासा है। और फिर भी ऐसे आदमी कितने हैं जो वास्तव में स्वाधीन हैं? बहुत थोड़े।

वेदान्त कहता है, इस जगत में आप हर घड़ी कारागार में बन्द हैं—ऐसी कारागार जिसमें तेहरी दीवालें हैं—काल की दीवाल, देश की दीवाल, और वस्तु की दीवाल। जब आपका प्रत्येक विचार, प्रत्येक कार्य उक्त कारणों की शृंखला से स्थिर होता है, और आप उस जंजीर में बंधे हुए हैं तो जब तक आप इस संसार में निवास कर रहे हैं, तब तक आप स्वाधीन कैसे हो सकते हैं। फिर भी स्वाधीनता हर एक और सब की प्रिय वस्तु है। क्या यह विचित्र और विरोधाभास नहीं है? क्या यह वचन-विरोध नहीं जान पड़ता है? यह समझाओ।

वेदान्त कहता है, इसका भी कारण है, और वह कारण आपके अन्दर है, आपसे बाहर नहीं है। आप में स्वाधीनता का यह विचार अर्थात यह सार्वभौम विचार हमें बताता है कि आप में कोई चीज है; और आप में वह वस्तु आपका सच्चा स्वरूप या आत्मा, अथवा वास्तविक 'अहं' है, क्योंकि यह स्वाधीनता आप 'मुझ' के लिए, 'मैं' के लिए अर्थात वास्तविक आत्मा के लिए चाहते हैं, और किसी दूसरे

के लिए नहीं । आप में ऐसी कोई वस्तु है, जो वास्तव में स्वाधीन, असीम और अपरिच्छिन्न है । इस विचार की सार्वभौमिकता स्पष्ट भाषा में प्रचार करती है कि मनुष्य का वास्तविक स्वरूप अर्थात् वास्तविक आत्मा कोई पूर्ण स्वतंत्र वस्तु है। परन्तु उसी तरह की भूल के कारण जो अज्ञानी लोग पृथ्वी की गति सूर्य पर आरोपित करने और सूर्य की किरणों को पृथ्वी पर लाने में करते हैं—अविद्या के कारण गुणों का परस्पर परिवर्तन करते हैं—हम शरीर, मन, 'स्थूल-शरीर' के लिये स्वाधीनता की प्राप्ति करना चाहते हैं।

इस संसार में हम एक और अति विचित्र घटना देखते हैं। अपने परिच्छिन्नात्मा की दृष्टि से प्रत्येक मनुष्य इस संसार में पापी है। प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी तरह, किसी न किसी त्रुटि या कमी का जिम्मेदार है, और फिर भी अपने सच्चे हृदय से कोई भी अपने को पापी नहीं समझता है। इस विशाल विश्व में पृथ्वीतल पर कोई अर्थात् एक भी व्यक्ति अपनी प्रकृति के पापिष्ट होने पर विश्वास नहीं करता। अपने आन्तरिक हृदय से वह अपने को शुद्ध समझता है। व्यावहारिक जीवन में कोई भी अपने को पापी नहीं समझता। ऊपर से यदि तुमने अपने को पापी पुकारा भी तो क्या हुआ। किन्तु तब भी वास्तविक लक्ष्य यही रहता है कि लोग मुझे धर्मात्मा मनुष्य समझें। अपने को पापी कहने का असली मन्तव्य यही होता है कि लोग हमें धर्मात्मा वा पुण्यात्मा कहें; परन्तु अपने अन्तरतम हृदय में उन्हें अपनी प्रकृति के पापमय होने पर कुछ भी विश्वास नहीं होता। हर एक अपने विचार से शुद्ध है। न्यायालय में ऐसा प्रश्न होने पर कि "तुमसे पाप हुआ" घोर पापी और अपराधी कदाचित ही कभी कहते हैं "हाँ, हम से पाप हुआ।" यदि लाचार होकर उन्हें पापाचार स्वीकार करना पड़ता है, तो मामले में कोई दूसरा ही पंच होता है। यद्यपि बाहर से वे अपने

पाप-कर्म को स्वीकार करते हैं, तथापि अपने हृदयों में वे अपनी स्वीकृति (confession) को गलत समझते हैं। उन्होंने कोई पाप नहीं किया। यह कैसी बात है ? जो लोग देवालय में पुजारी के सामने अपने पापों को स्वीकार करते हैं, उन्हें भी सड़क पर यदि कोई चोर के नाम से पुकारता है, तो वे पलट पड़ते हैं और उस पर मुकदमा चलाते हैं, अर्थात् अभियोग लगाते हैं और न्यायालय से दण्ड दिलवाते हैं। केवल ईश्वर के सामने, देवालय में उन्होंने परमात्मा के नेत्रों में धूल झोंकने की चेष्टा की थी। केवल देवस्थान में उन्होंने अपने आप स्वीकार करके अपने को पापी कहा था।

यह अद्भुत घटना भी स्पष्ट करती है कि इस संसार में कितनी बेहूदगी एवं वाक्य विरोध है। यह बेढंगापन कैसे दूर होगा ? वेदान्त कहता है, "हम पापी नहीं हैं और हम पाप से बहुत परे हैं," इस विचार को निर्मूल कर सकने की हमारी असमर्थता और अपनी प्रकृतियों के निष्पाप होने में हमारे व्यावहारिक विश्वास की सर्वव्यापकता इस बात के जीते-जागते प्रमाण तथा लक्षण हैं कि वास्तविक आत्मा की प्रकृति निष्पाप है अर्थात् सच्ची आत्मा वा वास्तविक जीवात्मा स्वभाव से पाप-हीन, शुद्ध और पवित्र है। हमारा वास्तविक स्वरूप, अर्थात् वास्तविक आत्मा निष्पाप, विशुद्ध और परम पुनीत है। यदि आप इस व्याख्या को नहीं मानते, तो इस स्पष्ट वाक्य-विरोध की किसी दूसरी तरह से व्याख्या कीजिये।

यह कैसी बात है कि हर एक मनुष्य बुद्धि से जानता है कि वह संसार का सारा धन नहीं संचय कर सकता, यथेच्छ धनी नहीं हो सकता है। यह हम नित्य ही अपने मध्य में देखते हैं। जो लोग करोड़पति प्रसिद्ध हैं, उनसे जाकर पूछिये कि क्या वे संतुष्ट और तृप्त हैं। यदि वे जी खोल कर आपसे बात करेंगे तो कहेंगे कि हम संतुष्ट नहीं हैं,

तृप्त नहीं है। वे और अधिक, और अधिक, और अधिक धन चाहते हैं। उनके हृदय भी उतने ही स्वच्छ हैं जितने कि उनके, जिनके पास केवल चार डालर (अमेरीकन रुपया) हैं। मन की शांति, संतोष और विश्राम के लिये चार रुपये और चार अरब रुपये में कुछ भी अन्तर नहीं है। ये काम धन के नहीं हैं। यदि धनी होते हुए भी लोग संतुष्ट और शान्त हैं, तो शान्ति का कारण दौलत नहीं है। किन्तु उस शान्ति का कारण अवश्य ही कुछ और होगा, अवश्य ही उसका कारण अनजाने वेदान्त का व्यवहार होगा, और कुछ नहीं। उनकी शान्ति का कारण एकमात्र वही (वेदान्त का व्यवहार) हो सकता है, क्योंकि विभूति में अपने स्वामी को प्रसन्न करने की शक्ति नहीं है।

हमें अब निश्चय है कि दौलत के संचय से भौतिक सम्पत्ति से शान्ति की प्राप्ति नहीं होती, और फिर भी प्रत्येक मनुष्य अर्थ का भूखा है, अर्थ के लिए छटपटा रहा है। क्या यह विचित्र नियम विरुद्धता नहीं है ? इसे समझाइये। कोई भी तत्वशास्त्र या धर्म इसे पूरे तर्क से या युक्तिपूर्वक नहीं समझाता। वेदान्त कहता है, यह देखो, सम्पत्ति के लिए अर्थात सब कुछ बटोरने और संचय करने के लिए हाय-हाय मची हुई है। यह क्यों ? शरीर समस्त संसार को अपने अधिकार में कदापि नहीं ला सकता। यदि सारा संसार भी आपके अधिकार में आ जाय, तो भी आपको संतोष न होगा; आप चन्द्रलोक पर अधिकार जमाने की बात सोचने लगेंगे ! सारे संसार के शासक सम्राटों का ख्याल कीजिये। उस नीरो जैसे सम्राट का ध्यान कीजिए। क्या आपके रोमांच नहीं होता ? उन कैसर और नीरो जैसे सम्राटों की मानसिक अवस्थाओं पर विचार कीजिये। क्या वे सुखी थे ? क्या वे संतुष्ट थे ? उनमें से एक (नीरो) खाता है, वह खाने का शौकीन है

और हर घड़ी एक से एक स्वादिष्ट भोजन उसके लिए तैयार रहते हैं। वह एक पदार्थ जी भर के खाता है और अब उसके पेट में जगह नहीं है। उसके पास वमन करने की औषधियाँ हैं, और उनसे वह अभी खाया हुआ पदार्थ कै कर देता है। अब दूसरे पदार्थ उसके पास लाये जाते हैं, और वह फिर इच्छा भरके खाता है। यह सब केवल रुचि की तृप्ति के लिए। इस तरह वह समस्त दिन खाता और वमन करता रहता है। क्या वह तृप्त हुआ? क्या उसे शान्ति मिल गई? नाम मात्र को भी नहीं। हमें इसका निश्चय है। नहीं, सम्पूर्ण संसार के अधिकारी हम नहीं बन सकते, और यदि बन भी जाँय तो भी क्या परिणाम होगा? सम्पूर्ण संसार को प्राप्त कर यदि आपने अपनी आत्मा खो दी, तो क्या फल हुआ? ज्योतिष-विद्या-विषयक गणनाओं में स्थिर नक्षत्रों के साथ जब हम व्यवहार करते हैं, उस समय आप की यह पृथिवी एक बिन्दु मात्र होती है। यह पृथिवी गणित शास्त्रीय परिमाण-रहित बिन्दु मात्र समझी जाती है।

आपकी यह पृथ्वी क्या है? इस पृथ्वी पर अधिकार होने से वास्तविक तृप्ति अथवा वास्तविक शान्ति कैसे मिल सकती है? यद्यपि बुद्धि की ओर से हम यह जानते हैं, तथा इस ऐश्वर्य के पीछे बिना झपटे हम नहीं मान सकते। वेदान्त कहता है, इसका कारण यही है कि आपका वास्तविक आत्मा अर्थात् आप में वास्तविक 'अहं' वस्तुतः सम्पूर्ण सृष्टि का स्वामी है। इसी कारण से तुम अपने को सारे संसार का मालिक देखना चाहते हो।

भारत में एक महाराजा की कथा प्रचलित है, जो अपने पुत्र द्वारा कारागार में डाल दिया गया था। उसका पुत्र सम्पूर्ण राज्य का अधिकारी बनने का अभिलाषी था, इसीलिए वह कैदखाने में बन्द किया गया था। पुत्र ने अपनी धन की भूख बुझाने के लिए पिता को जेल-

खाने में डाला था। एक बार पिता ने अपने ही पुत्र को कुछ विद्यार्थी भेज देने को लिखा ताकि विद्यार्थियों को पढ़ाकर वह अपना मनोरञ्जन कर सके। इस पर पुत्र ने कहा, "इस मनुष्य अर्थात् मेरे पिता की सुनते हो। वह इतने वर्षों तक साम्राज्य का शासन करता रहा है और अब भी हुकूमत करने की अपनी पुरानी आदत उससे नहीं छोड़ी जाती। वह अब भी विद्यार्थियों पर शासन करना चाहता है, कोई न कोई उसे शासन करने के लिए चाहिए। वह अपनी पुरानी आदतें नहीं त्याग सकता।"

यही बात है। हम अपनी पुरानी आदतें कैसे त्याग सकते हैं? पुराना अभ्यास हम में चिपटा रहता है। हम उसे दूर नहीं कर सकते। आपका वास्तविक आत्मा वा सम्राट शाहजहां (इस शब्द का अर्थ है, 'सारे संसार का शासक', और इस प्रकार उस सम्राट् शाहजहां के नाम का अर्थ है, सम्पूर्ण विश्व का सम्राट्) विश्व अर्थात् ब्रह्माण्ड का सम्राट् है। अब आपने सम्राट् को एक बन्दीखाने में, अपने शरीर की अन्धी कोठरी में, अथवा अपने परिच्छिन्न-आत्मा की हदबन्दी में डाल रक्खा है। वह वास्तविक आत्मा, वह विश्व का सम्राट् अपने पुराने अभ्यासों को भला कैसे भूल सकता है? वह अपने स्वभाव को कैसे त्याग सकता है? किसी में भी अपनी प्रकृति को दूर कर देने की शक्ति नहीं है। इसी प्रकार आत्मा अर्थात् आप का असली स्वरूप आप में असली तत्त्व वा अपने स्वभाव ओ भला कैसे छोड़ सकता है? आपने उसे कारागार में बन्द कर रक्खा है, किन्तु कारागार में रहते हुए भी वह सारे संसार पर अधिकार करना चाहता है, क्योंकि समग्र ब्रह्माण्ड उसका था। वह अपनी पुरानी आदतों को नहीं छोड़ सकता। यदि आप चाहते हैं कि आकांक्षा का यह भाव, अथवा यह लोभ दूर हो जाना चाहिए, यदि आपकी इच्छा है कि इस संसार के लोगों का लिप्सा-भाव

जाता रहे, तो क्या आप उन्हें ऐसा करने का उपदेश दे सकते हैं? असम्भव !

कुछ कटु बातें कहने के लिए आप राम को क्षमा करेंगे, परंतु सत्य कहना ही होगा। राम सत्य का व्यक्तियों से अधिक आदर करता है। सत्य कहना ही चाहिए। बाइबिल में मैथ्यू के पाँचवें अध्याय में, पहाड़ी पर उपदेश (Sermon on the Mount) में कहा गया है, "यदि आप के एक गाल पर कोई थप्पड़ जमावे, तो दूसरा भी उसकी ओर कर दीजिये"। जब आपको पवित्र सिद्धान्तों का प्रचार करना हो तब अपने पास धन न रखिये; नंगे पैर, नंगे सिर जाना चाहिए। यदि न्यायालय में आप बुलाये जायँ तो जाने के पहले यह न सोचिये कि आपको क्या कहना पड़ेगा। अपना मुँह खोलिये और वह भर जायगा। उद्यान के फूलों और वन के पक्षियों को देखिये। वे दूसरे दिन का कोई विचार नहीं करते, परन्तु कोकावेलियों और गौरैय्यों को ऐसे वस्त्र पहनने को मिलते हैं कि 'सालोमन' भी स्पर्धा करे। क्या आपकी बाइबिल में यह वर्णन नहीं कि "ऊँट चाहे सुई की नोक से निकल जाय, परन्तु धनी के लिए स्वर्ग के राज्य की प्राप्ति असम्भव है।" क्या आपने बाइबिल में नहीं पढ़ा है कि "एक धनी आदमी ने आकर ईसामसीह से दीक्षित होने की इच्छा प्रकट की" और ईसामसीह ने कहा, "तुम्हारे लिए एक ही उपाय है; दूसरा कोई नहीं। अपनी सब दौलत तुम लुटा दो। इतना करने ही से तुम्हें शान्ति मिल सकती है"। त्याग का यह भाव, यह अध्याय, जो कम से कम भारत में और सारे संसार में, धर्म प्रचारकों (मिशनरियों) द्वारा बहुत पीछे रक्खा जाता है, यह अध्याय वेदान्त की और उन उपदेशों की शिक्षा देता है जिनका पालन आज भी भारतीय साधु करते हैं। उस पवित्र धर्म के नाम में, त्याग की उस शिक्षा के नाम में जरा उन लोगों पर ध्यान

दीजिये जो भारत में आचार्य और धर्म-प्रचारकों की हैसियत से जाते हैं। राम को कृपया आप क्षमा करें। यदि आप आत्मा को शरीर में समझते हैं, तो किसी को रुष्ट न होना चाहिए। किसी को जरा सा भी रुष्ट होने का अधिकार नहीं है, यदि उसके तुच्छ शरीर के विरुद्ध कुछ कहा जाता है।

क्या यह विस्मय की बात नहीं है कि त्याग के नाम पर भारतवर्ष जाने वाले लोग नित्य गाड़ियों पर आराम करें, शानदार महलों में रहें, और बारह चौदह सौ रुपये महीने वेतन लेकर राजसी ठाठ से रहते हुए कहें कि हम त्याग के धर्म का प्रचार और उपदेश करते हैं ? क्या यह विचित्रता नहीं है ? वेदान्त कहता है कि मञ्च पर से किसी प्रकार की शिक्षा या प्रचार के द्वारा आप धन संचय और प्रत्येक वस्तु के अधिकारी बनने के विचार का दमन नहीं कर सकते। तुम इसका दमन नहीं कर सकते, क्योंकि अपने वास्तविक आत्मा का सार्वभौम प्रभुत्व अथवा विश्वव्यापी एकराजाधिपत्य तुम नाश नहीं कर सकते। किन्तु क्या यह रोग असाध्य है ? क्या इस रोग का कोई औषधि वा कोई प्रतिकार नहीं है ? है, है। इस घोर पाप का कारण अज्ञान है, जिस अज्ञान के कारण आप आत्मा का गौरव शरीर पर आरोपित करते हैं, और दूसरी ओर शरीर के क्लेश को आत्मा पर आरोपित करते हैं। इस अज्ञान को दूर करो और निर्धन होता हुआ भी मनुष्य तुम्हें समृद्धिशाली दिखाई पड़ेगा, और सम्पत्ति या भूमि से हीन होता हुआ भी मनुष्य तुम्हें सम्पूर्ण संसार का महाराजा दिखाई पड़ेगा। जब तक अविद्या वर्तमान है तब तक आप में लोभ और आकांक्षा रहेगी ही। इसका कोई उपाय नहीं है, कोई इलाज नहीं है। इस ज्ञान को प्राप्त करो, इस दबी-बुद्धिमत्ता को प्राप्त करो, और आत्मा को बन्धनमुक्त करो, उसे कैदखाने से तुरन्त निकालो। उसे स्वाधीन करो। इसका आशय यह

है कि अपना सच्चा, नित्य अनन्त आत्मा का (जो ईश्वर है, स्वामी है, विश्व का शासक है) अनुभव करो। ऐसा अनुभव करो, और तुम पवित्रों के पवित्र अर्थात् महापवित्र हो जाते हो, और लौकिक वसुधा या सांसारिक ऐश्वर्य के विचार को स्थान देना भी आप को पाप-कर्म तथा अपमानजनक समझ पड़ेगा।

संसार के उन सब देशों को जीतने के बाद, जो उसे ज्ञात थे, जब सिकन्दर भारत में आया तो उसने विलक्षण भारत-वासियों को, जिनकी चर्चा उसने बहुत सुनी थी, देखने की इच्छा प्रकट की। सिंधु नदी के तट पर किसी साधु या आचार्य के पास लोग उसे ले गये। साधु बालू पर नंगे-सिर, नंगे-पैर, नंगे-बदन पड़ा हुआ था और यह भी पता नहीं कि कल भोजन उसे कहाँ से मिलेगा। इस दशा में पड़ा हुआ वह घाम खा रहा था। महान् (आजम) सिकन्दर उसके निकट अपने पूरे गौरव युक्त खड़ा हो गया है, ईरान से उसने जो ज्वाज्वल्यमान रत्न और हीरे पाये थे उनसे जटित उसका मुकुट चमचमा रहा है, प्रकाश फैला रहा है। और उसी के निकट विना वस्त्र के वह साधु पड़ा था। कितना अन्तर है, कितना भेद है! एक ओर तो सारे संसार के वैभव का प्रतिनिधि-स्वरूप सिकन्दर का शरीर, और दूसरी ओर सारी गरीबी का प्रतिनिधि स्वरूप महात्मा है किन्तु उनकी वास्तविक आत्माओं की गरीबी या अमीरी के यथार्थ ज्ञान के लिए केवल उनके मुखमण्डलों की ओर आपको देखने की जरूरत है।

भाइयो और बहनो! अपने घावों को छिपाने के हेतु तुम ऐश्वर्य के लिए हाय हाय करते हो; उन (घावों) को ढकने के लिए तुम पट्टी बांधते हो। इस एक साधु को देखिये, जिसकी आत्मा धनाढ्य थी; इसी साधु को देखिये, जिसे अपनी आत्मा की अमीरी और गौरव का अनुभव हो गया था। उसके पास महान् सिकन्दर खड़ा है, जो अपनी

आन्तरिक दीनता को छिपाना चाहता है। महात्मा के प्रभापूर्ण, प्रसन्न, आनन्दमय चेहरे की ओर देखिये। महान् सिकन्दर उसकी सूरत से चकित हो गया। वह उस पर आसक्त हो गया और उसने महात्मा से यूनान चलने को कहा। साधु हँसा और उसने उत्तर दिया, "संसार मुझ में है, मैं संसार में नहीं आ सकता। विश्व मुझ में है, मैं विश्व में बद्ध नहीं हो सकता। यूनान और रूम मुझ में हैं। सूर्य और नक्षत्र मुझ में उदय और अस्त होते हैं।"

महान् सिकन्दर इस प्रकार की भाषा का अभ्यासी न होने के कारण विस्मित हुआ। उसने कहा, "मैं तुम्हें धन दूँगा। सांसारिक सुखों से मैं तुम्हें डुबा दूँगा। सब तरह के पदार्थ, जिनकी लोग इच्छा करते हैं, सब तरह के पदार्थ, जो लोगों को मोहते और अपना दास बनाते हैं, बाहुल्य से तुम्हें प्राप्त होंगे। कृपया मेरे साथ यूनान चलिये।"

महात्मा उसके उत्तर पर खूब हँसा और बोला, "ऐसा कोई हीरा या सूर्य या तारा नहीं है, जिसके प्रकाश का कारण मैं नहीं हूँ। सम्पूर्ण नक्षत्रों के गौरव का कारण मैं हूँ। समस्त इच्छित वस्तुओं की मोहनी वा चित्ताकर्षक शक्ति मुझसे है। पहले तो इन पदार्थों को गौरव और मनोहरता मैंने प्रदान की, और अब इन्हें ढूँढ़ता फिरूँ? सांसारिक धनिकों के द्वारों पर माँगता फिरूँ? सुख और आनन्द पाने के लिए पाशविक वृत्तियों और स्थूल शरीर के दरवाजों पर हाथ फैलाऊँ? यह मेरी मर्यादा के विरुद्ध है, मेरे लिए अपमान-जनक है। यह मेरी शान के खिलाफ है। मैं इतना नीचा कभी नहीं झुक सकता। नहीं, मैं उनके द्वार पर जाकर हाथ नहीं पसार सकता।"

इससे महान् सिकन्दर आश्चर्य में पड़ गया। उसने अपनी तलवार खींच ली और साधु का सिर उड़ा देना ही चाहता था कि अब तो साधु ठटठा कर हँसा और बोला, "ऐ सिकन्दर! तूने अपने जीवन में इतनी

झूठी बात कभी नहीं कही, ऐसा घृणित मिथ्यालाप कभी नहीं किया। मुझे मार, मुझे मार, मुझे मार। वह तलवार कहाँ है जो मुझे मार सकती है? वह कौन सा अस्त्र है जो मुझे घायल कर सकता है। ऐसी कौन सी विपत्ति है, जो मेरी प्रसन्नता को नष्ट कर सकती है? वह कौन सा रंज है, जो मेरे आनन्द में विघ्न डाल सकता है? नित्य, आज, कल और सदा एकरस, पवित्रों में पवित्र और शुद्ध में शुद्ध, विश्व ब्रह्माण्ड का प्रभु हूँ, मैं वही हूँ, मैं वही हूँ। ऐ सिकन्दर! जो शक्ति तुम्हारे हाथों को चलाती है वह मैं ही हूँ। तुम्हारे इस शरीर के मर जाने पर भी मैं वही शक्ति, जो तुम्हारे हाथों को चलाती है, बनी रहती हूँ। मैं ही वह शक्ति हूँ, जो तुम्हारी नसों को हरकत देती है।" सिकन्दर के हाथ से तलवार छूट पड़ी।

इससे हमें पता चलता है कि त्याग के भाव का लोगों को अनुभव कराने का केवल एक ही उपाय है। लौकिक दृष्टि से हम तभी सर्वस्व त्यागने को तैयार होते हैं जब दूसरी दृष्टि से हम धनी हो जाते हैं। "गरीबी में जो कुछ मिलता है वह टिकाऊ होता है" क्या आपने अशंकनीय (unquestionable) वैज्ञानिक नियम नहीं सुना कि—what is gained in poverty is lasting बाहरी हानि अथवा बाहरी त्याग की प्राप्ति तभी होती है जब भीतरी पूर्णता, आन्तरिक स्वामित्व या सम्राटत्व की प्राप्ति होती है। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।

इस संसार में क्रोध का अस्तित्व क्यों है? हम नित्य बड़े-बड़े उपदेश सुनते हैं कि हमें क्रोध कभी न करना चाहिए, निर्बलता को कभी न पास फटकने देना चाहिए। इस आशय के उपदेश हम नित्य सुनते हैं; तथापि जब अवसर पड़ता है, तब हम दब जाते हैं। ऐसा क्यों है? क्रोध, द्वेष अपनी बड़ाई वा प्रशंसा तथा अन्य पाप क्यों हैं?

इन सब पापों की व्याख्या भी वेदान्त उसी प्रणाली और सिद्धान्त पर करता है। इन सब पापों पर व्यौरेवार विचार करने का शायद समय नहीं है। यदि आप इस सम्बन्ध में अधिक जानना चाहते हैं, तो राम के पास आइये। आप को सब पापों का कारण और निदान भली भांति समझा दिया जायगा। परन्तु अब समय बहुत थोड़ा रह गया है, इस लिए राम सब का सारांश कहेगा। अब आपका ध्यान विशेष करके इस तथ्य की ओर खींचा जाता है कि इन सब पापों का कारण अविद्या है, जिस के कारण आप वास्तविक आत्मा को स्थूल शरीर तथा चित्त के साथ एक कर देते हैं। इस अज्ञान को त्यागो और इन पापों का कहीं पता भी न लगेगा। यदि इन पापों को आप किसी और उपाय से दूर करना चाहेंगे तो आपका प्रयत्न अवश्य असफल होगा, क्योंकि कोई भी पदार्थ नष्ट नहीं किया जा सकता। अज्ञान का निस्सन्देह नाश किया जा सकता है। अविद्या को हम हटा सकते हैं। जन्म लेने पर बच्चे इस संसार की अनेक बातों से अनभिज्ञ रहते हैं। किन्तु हम देखते हैं कि क्रमश: अनेक विषयों के सम्बन्ध में उनकी अज्ञानता घटती जाती है। केवल अज्ञान दूर किया जा सकता है।

ऐसी दशा में, एक ऐसी शक्ति है जो आपको क्रोध दिलाती है, और आपमें आकाक्षायें पैदा करती है, पाप करवाती है, और जिसकी प्रेरणा से आप धन-सञ्चय करते हैं। आप अपने उपदेशों और शिक्षाओं से इस शक्ति को किसी तरह भी नहीं मिटा सकते, आप इसे दमन नहीं कर सकते, आप इसे कदापि दबा नहीं सकते, क्योंकि वहाँ शक्ति है। वेदान्त कहता है, हम इस शक्ति को आत्मा में घटा सकते हैं। इसका दुरुपयोग न कीजिये। इसका उचित प्रयोग कीजिये। आप में जो असली तत्व है, जो शुद्ध आत्मा है, जो अद्वितीय है, जो समग्र संसार का मालिक है, उसी की यह शक्ति है।

हर एक स्वतंत्र वा स्वाधीन होना चाहता है। और स्वाधीनता के भाव का, स्वाधीनता की आकांक्षा का प्रधान लक्षण, मूल रूप क्या है ? वह है उस उंचाई पर उठना, जहां द्वद्व नहीं है। वास्तविक आत्मा की शक्ति चाहती है कि आप उस अवस्था को प्राप्त करें जहाँ आपको पूरी स्वाधीनता है, अर्थात् जहाँ आपका कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं है; जहाँ आपकी बराबरी का कोई नहीं है। आत्मा, अर्थात् वास्तविक आत्मा का कोई प्रतिद्वंद्वी नहीं है। यदि आप सांसारिक स्वार्थपरता या आत्म-श्लाघा के विचार से पीछा छुटाना चाहते हैं, तो आप असली शक्ति को हटा और नाश नहीं कर सकते। किसी भी शक्ति का नाश नहीं किया जा सकता, न नित्य आत्मा का ही विनाश किया जा सकता है। प्रत्येक वस्तु का आप दुरुपयोग कर सकते हैं और स्वर्ग को नरक बना सकते हैं।

एक पादरी अर्थात् इङ्गलैंड के ईसाई पादरी की कहानी है। कुछ महापुरुष, अर्थात् बड़े वैज्ञानिक, डार्विन और हक्सले की मौतों का हाल उसने पढ़ा। वह अपने मन में विचारने लगा कि वे स्वर्ग गये या नरक। वह इस विचार में खूब मग्न था। उसने अपने मन में कहा, "इन लोगों ने कोई पाप नहीं किये, परन्तु इन्हें बाइबिल पर वा ईसा-मसीह पर विश्वास नहीं था, और यथार्थ में ये ईसाई नहीं थे। वे अवश्य नरक गये होंगे।" परन्तु इस विचार पर वह दृढ़ न हो सका। वह सोचता है, "वे अच्छे लोग थे, संसार में उन्होंने कुछ अच्छा काम किया था, वे नरक के पात्र नहीं थे। तो फिर वे गये कहाँ ?" वह इसी प्रकार विचार करते-करते सो गया और उसने एक अत्यन्त अद्भुत स्वप्न देखा। उसे स्वप्न हुआ कि वह स्वयं मरा और श्रेष्ठ स्वर्ग में पहुँचाया गया। वहाँ उसे वे सभी दिखाई पड़े जिन्हें पाने की उसने आशा की थी; जो ईसाई भाई उसके गिरजे में आते थे, वे सब

उसे दिखाई पड़े। उनसे उसने इन वैज्ञानिकों, हक्सले और डार्विन के सम्बन्ध में पूछा। स्वर्ग के द्वारपाल या किसी अन्य कार्याधीश (steward) ने कहा, वे घोरतम नरक में हैं।

अब इस पादरी ने पूछा, केवल उन्हें देखने और पवित्र बाइबिल की शिक्षा देने तथा यह बताने के लिए कि बाइबिल की आज्ञाओं पर विश्वास न करके उन्होंने घोर पाप किया था, क्या क्षण भर के लिए मुझे घोरतम नरक में जाने की अनुमति मिल सकती है ? कुछ वाद-विवाद के बाद कार्याधीश ढीला पड़ा और उक्त पादरी के लिए घोरतम नरक का प्रवेशपत्र ला देना स्वीकार किया। आप को आश्चर्य होगा कि स्वर्ग और नरक में भी आप अपनी रेलगाड़ियों में आते जाते हैं, पर बात ऐसी ही है। उस मनुष्य का पालन-पोषण ऐसे स्थान में हुआ था जहाँ रेल-व्यापार और तार की भरमार थी। अतएव यदि उसके विचारों में, उसके स्वप्नों में नरक और स्वर्ग से रेलों का मेलजोल हो गया, तो कोई आश्चर्य नहीं।

अच्छा, इस पादरी को पहले दरजे का टिकट मिला। रेलगाड़ी चली ही जा रही है, बीच में कुछ स्टेशन थे, क्योंकि सर्वोच्च स्वर्ग से निम्नतम नरक को उसे जाना था। बीच के स्टेशनों पर वह ठहरा और देखा कि ज्यों-ज्यों नीचे उतर रहा हूँ त्यों-त्यों दशा बिगड़ती ही जाती है। जब वह उस नरक में पहुँचा जहाँ से सब से नीचा नरक उसके बाद था, तो वह अचेत हो गया। ऐसी घोर दुर्गन्ध आ रही थी कि यद्यपि सारे रूमाल और अँगौछे उसने नथुनों में लगा लिये फिर भी वह बेहोश हो ही गया, उसे मूर्छा आ गई। इस नरक में लोग इतना हाय-हाय कर रहे थे, रो और चिल्ला रहे थे तथा दाँत कटकटा रहे थे कि वह सह न सका। इन दृश्यों के कारण वह अपनी आँखें खुली न रख सका। सब से नीचे का नरक देखने के निमित्त अपने आग्रह के लिए वह पछताने लगा।

कुछ ही मिनटों में यात्रियों के सुभीते के लिए रेल के चबूतरे (प्लेटफार्म) पर लोग चिल्ला रहे थे, "सब से नीचा नरक, घोरतम नरक"। स्टेशन की दीवालों पर खुदा हुआ था, "सब से नीचा नरक"। किन्तु पादरी विस्मित हुआ। उसने सब से पूछा, "यह घोरतम नरक कैसे हो सकता है? यह स्थान तो दिव्यतम स्वर्ग के लगभग होगा। नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता। यह सब से नीचा नरक नहीं है, यह सब से नीचा नरक नहीं है, यह तो स्वर्ग है"। रेल का रक्षक (गार्ड) या संचालक ने उससे कहा, "यही स्थान है," और एक आदमी ने आकर कहा, "महाशय, उतर पड़िये, आपका निर्दिष्ट स्थान यही है।"

वह बेचारा उतर तो पड़ा परन्तु बड़ा चकित हुआ। उसने आशा की थी कि यह सब से नीचे का नरक अपने पूर्ववाले से भी बुरा होगा। किन्तु यह तो उसके अपने सर्वोपरि स्वर्ग के प्रायः समान ही था। वह रेल के स्टेशन से बाहर निकला और वहाँ उसने सुन्दर बग़ीचे देखे, जिनमें सुगन्धित पुष्प खिले हुए थे; और शीतल मन्द-सुगन्ध पवन के झकोरे उसके मुख पर लगने लगे। उसे एक लम्बा भद्रपुरुष मिला। उसका नाम उसने पूछा, और सोचा कि इस आदमी को तो पहले भी मैं देख चुका हूँ। वह आदमी उसके आगे जा रहा था और पादरी पीछे-पीछे। जब वह मनुष्य बोला तो पादरी प्रसन्न हुआ। दोनों ने हाथ मिलाये और पादरी ने उसे पहचान लिया। यह कौन आदमी था? यह हक्सले था। उसने पूछा, "यह कौन स्थान है, क्या यही निम्नतम नरक है?" हक्सले ने उत्तर दिया, "हाँ, यही है"। तब उसने कहा, "मैं तुम्हें उपदेश देने आया था, परन्तु पहले यह बताओ कि यह बात क्या है जो ऐसा चमत्कार मैं देख रहा हूँ"। हक्सले ने कहा, "महा भीषण अवस्था विषयक तुम्हारा अनुमान अनुचित

नहीं था। वास्तव में जब हम यहाँ आये थे तो यही विश्व-ब्रह्माण्ड का अति रौरव नरक था। इससे अधिक अवांछनीयता की धारणा नहीं हो सकती थी।'' और उसने कुछ स्थानों को दिखाकर कहा,—''ये गन्दी खाइयाँ थीं। दूसरे स्थल को दिखाकर उसने कहा,—''यहाँ तपा हुआ लोहा था।'' एक और स्थान को दिखलाकर कहा,—''यहाँ गरम बालू थी, और वहाँ बहुत बदबूदार गोबर था।''

उसने कहा,—''पहले हम अत्यन्त गन्दी खाइयों में डाल दिये गये, परन्तु वहाँ रहते हुए हम पास के जलते हुए लोहे पर पानी फेंकते रहे। और हम नालों के मैले पानी को किनारों पर पड़े जलते हुए लोहों पर उलचने का काम करते रहे। तब घोरतम नरक के कार्याध्यक्ष लाचार होकर हमें उस स्थान पर ले गये जहाँ जलता हुआ तरल लोहा था। किन्तु जब तक वे हमें वहाँ ले गये, तब तक बहुत सा लोहा बिलकुल ठण्डा हो गया था, बहुत सा लोहा स्पर्श किया जा सकता था, परन्तु फिर भी बहुत सा लोहा तरल अर्थात् जलती हुई अग्निमय दशा में था। तब जो लोहा बुझकर ठण्डा हो गया था उसकी सहायता से और उसे आँच के सामने करके हम कुछ कल और दूसरे औजार बनाने में समर्थ हुए।'' इसके बाद हमें उस तीसरे स्थान पर जाना था, जहाँ गोबर था। वहाँ हम पहुँचाये गये, और अपने औजारों, लोहे के फावड़े और कलों से हमने खोदने का काम शुरू कर दिया। तदुपरान्त हम दूसरे प्रकार की जमीन पर पहुँचाये गये, और वहाँ अपने तैयार किये औजारों और कलों की सहायता से वहाँ की कुछ चीजें हमने उस भूमि में डालो। उन्होंने खाद का काम दिया और इस तरह धीरे-धीरे हम इस नरक को सच्चा स्वर्ग बनाने में समर्थ हुए।''

बात यह है कि घोरतम नरक में सब पदार्थ ऐसे वर्तमान थे, जो केवल अपने उचित स्थानों पर रख दिये जाने से ही दिव्य स्वर्ग बना

सकते थे। वेदान्त कहता है—यही बात है, तुम में परमेश्वर वर्तमान है, और तुम में निरर्थक शरीर मौजूद है, परन्तु तुमने वस्तुओं को स्थान-भ्रष्ट कर दिया है। तुमने चीजों को ऊपर-नीचे कर दिया है, तुमने उन्हें उलटा-पुलटा रख दिया है। तुमने गाड़ी को घोड़ों के आगे रख दिया है। और इस तरह इस संसार को तुम अपने लिए नरक बनाते हो। तुम्हें न तो कोई वस्तु नष्ट करना है, और न कोई चीज खोदना है। अपनी इस आकांक्षामय भावना को अथवा इस स्वार्थपरता को, या अपनी इस क्रोध-वृत्ति को, या अपने किसी दूसरे दूषण को, जो ठीक स्वर्ग या नरक के तुल्य है, तुम नष्ट नहीं कर सकते; परन्तु यथाक्रम स्थान पर उन्हें रख सकते हो। किसी शक्ति का विनाश नहीं किया जा सकता; परन्तु इस नरक को तुम फिर से सँवार सकते हो और इसे दिव्य स्वर्ग में बदल सकते हो।

वेदान्त कहता है, यही एक ऐसा जादू है जो कारागार के कपाट खोल सकता है, यही एकमात्र उपाय है संसार से सब संकट निकाल देने का। उतरे हुए चेहरों, मलिन और उदास तबीयतों से मामले नहीं सुधरते। सब पापों से बचने और किसी भी प्रलोभन में न फँसने का एकमात्र उपाय है—सत्य आत्मा का अनुभव (प्राप्त) करना। जब तक आप इस बाह्य गौरव और महिमा का, जो आपको आकर्षित करती है, और आप पर जादू डालती है, त्याग न कर देंगे, तब तक आप पाशविक वृत्तियों को कदापि न रोक सकेंगे। जब आपको आत्मा का अनुभव हो जायगा, तब आप सब दुर्वृत्तियों से परे हो जायँगे, और साथ ही साथ बिलकुल स्वतन्त्र बा नितान्त स्वाधीन तथा आनन्द से पूरी तरह परिपूर्ण हो जायँगे। और यही है स्वर्ग!

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

सम्पादकीय टिप्पणी

[२० दिसम्बर १९०२ को 'एकेडेमी आफ साइंसेज' सेन फ्रांसिसको अमरीका में इस व्याख्यान की दूसरी आवृत्ति हुई। दूसरी आवृत्ति के मार्के के वाक्य अगले पन्नों में "पाप के पूर्व लक्षण और निदान" शीर्षक एक प्रकार से इसी व्याख्यान के सिलसिले में हैं।]

पूर्ववर्ती व्याख्यान के सिलसिले में—

पाप के पूर्वलक्षण और निदान

——:०:——

[ता० २० दिसम्बर १९०२ को एकेडेमी आफ साइंसेज सेन फ्रांसिसको अमेरिका में दिया हुआ व्याख्यान ।]

——:०:——

गँदली गढ़ैया में रहने वाली मुरगाबी के पंखों या शरीर के छूने पर आपको मालूम होगा कि वे सूखे हैं, पानी की रङ्गत या कीचड़ का उन पर नाममात्र भी असर नहीं पड़ा है, वे सूखे हैं। वे भीगते नहीं। वेदान्त कहता है, "ऐ मनुष्य ! इसी तरह तुझमें भी ऐसी कोई वस्तु है, जो निर्मल है, जो शरीर के अपराधों, पापों, और दुर्बलताओं से कभी दूषित नहीं होती।" इस दुष्टतामय (पापमय) और आलस्यपूर्ण संसार में वह (वस्तु) विशुद्ध रहती है। गलती कहाँ होती है ? निष्पाप अवस्था वास्तव में शुद्ध स्वरूप अर्थात् आत्मा का गुण है, परन्तु भूल से व्यवहार में यह गुण शरीर पर आरोपित किया जाता है। इस शरीर और चित्त को शुद्ध समझने के भाव की उत्पत्ति कहाँ से हुई ? लोगों के दिलों में इसे किसने जमाया ? किसी दूसरे ने नहीं,—वस्तुतः किसी दूसरे ने नहीं। न कोई शैतान, न कोई बाहरी पिशाच इसे आप के दिलों में जमाने आया। यह तुम्हारे भीतर है। कारण स्वयं कार्य में ही होना चाहिए। वे दिन बीत गये जब लोग अद्भुत

घटना का कारण घटना से बाहर ढूँढ़ते थे। किसी मनुष्य के गिर पड़ने का कारण प्रेत बताया जाता था; गिरने का कोई कारण मनुष्य से बाहर बतलाया जाता था। वे दिन गुजर गये। विज्ञान और तत्त्व-शास्त्र में ऐसी व्याख्यायें मान्य नहीं हैं। स्वयं घटना के अन्दर हमें व्याख्या ढूँढ़नी चाहिए। हम जानते हैं कि शरीर पापमय है, सदा अपराधी है, फिर भी हम अपने को निष्पाप समझते हैं। लोग इस अद्‍भुत घटना की व्याख्या कैसे करते हैं? वेदान्त कहता है, "किसी बाहरी शैतान का आश्रय लेकर इसे मत समझाओ, इसे बाहरी पिशाचों पर आरोपित कर इसकी व्याख्या मत करो। नहीं, नहीं। कारण तुम्हारे भीतर है। तुम्हारे भीतर पवित्रों का भी पवित्र और निष्पाप स्वरूप आत्मा है, जो आप को अपने अस्तित्त्व का बोध कराता रहता है, जो नष्ट नहीं किया जा सकता, त्यागा नहीं जा सकता और जिसके बिना रहना असम्भव है। शरीर कितना ही अपराधी अथवा कितना ही पापमय क्यों न हो, वास्तविक आत्मा और उसकी निष्पापता तो वहाँ है ही। वह अपना बोध करावेगी ही। वह वहाँ है, उसका विनाश नहीं किया जा सकता"।

अब हम भिन्न-भिन्न पापों, अर्थात् पाप कहे जाने वाली विविध घटनाओं की ओर आते हैं।

१. खुशामद—इसे हम सबसे पहले लेते हैं। इसे घोर पाप तो नहीं समझा जाता, परन्तु है यह पाप सार्वभौमिक।

यह क्या बात है कि तुच्छ से तुच्छ कीड़े से लगा कर ईश्वर तक को खुशामद पसन्द है? यह क्या बात है कि प्रत्येक प्राणी खुशामद का गुलाम है, स्तुति, लल्लो-चप्पो, और हाँजी-हाँजी चाहता है? प्रत्येक चाहता है कि वह बहुत कुछ समझा जाये; ऐसा क्यों है?

कुत्ते भी जब तुम उन्हें पुचकारते और थपथपाते हो तो बड़े ही

प्रसन्न होते हैं। उन्हें भी खुशामद पसन्द है। घोड़ों को चाटुकारिता (flattery) प्रिय है। घोड़े का मालिक आकर जब उसे प्यार से चुमकारता तथा पीठ ठोंकता है, तो वह अपने कान खड़े करके उत्साह से भर उठता है।

भारत में कुछ राजा शिकार में कुत्तों के बदले चीतों से काम लेते हैं, और शिकार को तीन ही छलांगों में पकड़ना चीते का स्वभाव है। यदि उसने शिकार (तीन छलांगों में) पकड़ लिया तो बहुत अच्छा, नहीं तो चीता हताश होकर बैठ जाता है। ऐसे अवसरों पर राजा-महराजा आकर चीते को थपथपाते और चुमकारते हैं और तब फिर उसमें शक्ति भर जाती है। हम देखते हैं कि चीतों को भी खुशामद पसन्द है। ऐसे आदमी को ले लीजिए जो किसी काम का नहीं अर्थात् व्यर्थ है। उसके पास जाइये और हाँ में हाँ मिलाकर उसका दिल बढ़ाइये, उसकी खुशामद कीजिये। ओः! उसका चेहरा प्रसन्नता से चमचमा उठता है। तुरन्त ही आपको उसके गालों पर लालिमा दिखाई पड़ेगी।

जिन देशों में लोग देवताओं की पूजा करते हैं, वहाँ हम देखते हैं कि वे (देवगण) भी चाटुकारिता से तुष्ट होते हैं। और कुछ एकेश्वरवादियों (monotheists) की प्रार्थनाओं का भी क्या अर्थ है? उनकी स्तुतियाँ व उनके आवाहन-मन्त्र क्या हैं? उनकी परीक्षा कीजिये। निःस्वार्थ भाव से तथा पक्षपात-बुद्धि को त्याग कर उनकी परीक्षा कीजिये, और आप देखेंगे कि खुशामद के सिवाय वे कुछ नहीं हैं। यह क्या बात है कि चाटुकारिता सार्वभौमिक है। प्रत्येक प्राणी खुशामद को पसन्द करता है, परन्तु साथ ही एक भी मनुष्य उस तरह की खुशामद का पात्र नहीं होता, जो उसे खुश करती है। एक भी मनुष्य उन अनावश्यक प्रशंसाओं की योग्यता नहीं रखता जो उसके प्रशंसक उसकी किया करते हैं। वेदान्त यह कहकर इसकी व्याख्या करता है कि प्रत्येक व्यक्ति में

अर्थात् प्रत्येक मनुष्य में वास्तविक स्वरूप अर्थात् सत्य आत्मा है, जो वस्तुत: श्रेष्ठों में सर्व-श्रेष्ठ और उच्चों में सर्वोच्च है। सचमुच तुम में कोई ऐसी वस्तु है, जो सब से उच्च है और जो अपने अस्तित्व का बोध कराती है। खुशामदी व्यक्ति जब हमारी प्रशंसा और स्तुतियाँ करने लगता है, तब हम फूल उठते हैं, और प्रसन्न हो जाते हैं। क्यों? इसका कारण यह नहीं है कि ये कथन सच्चे हैं; परन्तु वेदान्त कहता है कि वास्तविक कारण हमारे वास्तविक आत्मा में है। सब घटनाओं के पीछे कोई चीज़, कोई प्रबल शक्ति, अथवा कोई वस्तु ठोस, अक्षय, सर्वश्रेष्ठ और सर्वोच्च ऐसी है, जैसी आपका वास्तविक आत्मा है और जो सब तरह की खुशामद एवम् प्रशंसाओं के योग्य है। और कोई खुशामद, कोई भी स्तुति अथवा कोई भी उत्कर्ष ऐसा नहीं जो वास्तविक आत्मा के योग्य न हो सके। किन्तु इससे कोई यह नतीजा न निकाले कि राम खुशामद को नीति-संगत बतला रहा है। नहीं! वास्तविक आत्मा की खुशामद, प्रशंसा और गौरव-गान होना चाहिए, न कि शरीर का। परिच्छिन्नात्मा को इसका अधिकारी न समझना चाहिए।

"Render unto Caesar, the things that are Caesar's and render unto God, the things that are God's.

(Bible)

"जो पदार्थ सीजर (राजा) के हैं, वे सीजर को दे दो और जो ईश्वर की वस्तुयें हैं वे ईश्वर को दो।"

खुशामद में पाप इसलिए है कि सीजर की चीजें ईश्वर को और ईश्वर के पदार्थ सीजर को देने की भूल की जाती है। हमारी खुशामद के दास होने की पापात्मकता इसी उलट-पुलट दशा के कारण है। इसी में पापीपना है। नहीं, गाड़ी घोड़े के आगे रक्खी जाती है। यदि

आप अपने स्वरूप का अनुभव कर सर्वश्रेष्ठता और सर्वोच्चता से अपनी एकता का बोध करें, और उसे अपनी आत्मा समझें, शरीर से वा चित्त से ऊपर उठें, तो वास्तव में आप श्रेष्ठों में सर्वश्रेष्ठ हैं, उच्चों में सर्वोच्च हैं, आपही अपने आदर्श हैं। नहीं, नहीं, अपने ईश्वर आप ही हैं। इसका अनुभव कीजिये और आप स्वतंत्र है। किन्तु आत्मा, अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूप का गौरव शरीर को देने में और शरीर के लिए उत्कर्ष तथा खुशामद चाहने में भूल की जाती है। यह क्या बात है कि इस संसार में हर एक मनुष्य और हर एक पशु भी दर्प वा खुशामद से दूषित है ? बात यह है कि अहंकार और अभिमान सर्वव्यापी है।

एक सज्जन ने आकर राम से कहा, "देखिये, देखिये ! हमारा धर्म सर्वश्रेष्ठ है, क्योंकि उसके उपासकों की, उसे माननेवाले लोगों की संख्या सब से बड़ी है। मानव जाति का अधिकतम भाग हमारे धर्म का है, इसलिए अवश्य ही वह सब धर्मों से अच्छा है"। राम ने कहा, "भइया ! भइया !! समझ-बूझ कर बात कहो। तुम शैतान में विश्वास करते हो ?" उसने कहा, "क्यों" ? "तो कृपया बतलाइये—"शैतान के धर्म के अनुयायी अधिक हैं या आपके धर्म के ? यदि बहु-संख्या पर सत्य का निर्णय होना है, तो शैतान को सब पर श्रेष्ठता प्राप्त है"।

२. अहंकार—हम कहते हैं कि अभिमान या अहंकार ने—आप इसे शैतान का एक पहलू कह सकते हैं—इस संसार के प्रत्येक प्राणी पर दृढ़ अधिकार जमा लिया है। यह क्या बात है ? साथ ही हम यह भी जानते हैं कि शरीर किसी प्रकार के गर्व के योग्य नहीं है, शरीर को अभिमान करने का अथवा श्रेष्ठता का भाव दिखाने का कोई अधिकार नहीं है। हर एक जानता है कि शरीर किसी के अहंकार या अभिमान की पात्रता या योग्यता नहीं रखता, परन्तु हर एक में यह वर्तमान है। ऐसा क्यों है ? यह सार्वभौमिक घटना कहाँ से आई ? यह सार्वभौम विरोधाभास अर्थात्

यह सार्वभौम-विरोध कहाँ से आया ? यह अवश्य तुम्हारे भीतर से आया होगा। कारण ढूँढ़ने दूर नहीं जाना है। तुम्हारे भीतर श्रेष्ठों में जो सर्वश्रेष्ठ है; वह आपका वास्तविक आत्मा है। तुम्हें उसे जानना और अनुभव करना पड़ेगा, और जब तुम सच्चे स्वरूप अर्थात् वास्तविक आत्मा को जान लोगे और अनुभव कर लोगे, तब इस तुच्छ शरीर के लिए प्रशंसा पाने को तुम कभी न झुकोगे। तब फिर इस क्षुद्र शरीर के लिए अहंकार या गर्व प्राप्त करने को तुम कभी न झुकोगे। यदि तुम सच्चे आत्मा का अनुभव कर लो, यदि तुम स्वयं अपने हृदय का उद्धार कर लो, तो तुम्हीं अपने उद्धारक हो जाते हो। यदि तुम अपने अन्दर ईश्वर का अनुभव कर लो, तो इस तुच्छ शरीर के लिये प्रशंसायें सुनना, अपने शरीर की स्तुतियाँ सुनना तुम्हें अपने आपको तुच्छ और नीचे गिराने वाला कार्य समझ पड़ेगा। तब तुम शारीरिक अभिमान या स्वार्थपूर्ण अहंकार से ऊपर उठ जाओगे। शारीरिक अभिमान या स्वार्थ-मूलक अभिमान से ऊपर उठने का यही उपाय है।

भीतर की सच्ची आत्मा, सच्चा स्वरूप, श्रेष्ठों में श्रेष्ठ उच्चों में उच्च तथा देवों में परम देव होता हुआ अपने स्वभाव को कैसे छोड़ सकता है ? यह आत्मा अपने को पतित कैसे बना सकता है; अपने को दीन, भाग्यहीन, कीड़ा मकोड़ा जैसा कैसे मान सकता है ? इतनी गहरी अज्ञानता में वह अपने को कैसे गिरा सकता है ? वह अपनी प्रकृति नहीं त्याग सकता ? और अहंकार या अभिमान के सार्वभौमिक होने का यही कारण है, किन्तु इस व्याख्या से अहंकार या अभिमान नीति संगत नहीं सिद्ध होता। शरीर के लिए अभिमान अथवा अहंकार अयुक्त है।

हम जानते हैं कि पृथ्वी चलती है, और पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य स्थिर है। सब जानते हैं कि सूर्य नहीं चलता और पृथ्वी चक्कर लगाती है। किन्तु हम एक भूल करते हैं, अर्थात् भ्रम में पड़ जाते हैं।

पृथ्वी की गति हम सूर्य को प्रदान करते हैं, और सूर्य की अचलता पृथ्वी को। इसी तरह की भूल वे लोग करते हैं, जो अभिमान के भूखे हैं, जो अहंकार के अधीन हैं। यहाँ भी उसी तरह की भूल होती है। यहाँ आत्मा अर्थात् वास्तविक सूर्य प्रकाशों का प्रकाश है, जो अचल है, जो वास्तव में सम्पूर्ण गौरव का मूल है; और वहाँ शरीर पृथ्वी के तुल्य है, जो हर घड़ी बदलती रहती है, किसी तरह की प्रशंसा की पात्र नहीं, और किसी प्रकार के गौरव के योग्य नहीं है; परन्तु आत्मा का गौरव शरीर को प्रदान करने में और शरीर की निरर्थकता आत्मा को अर्थात् वास्तविक स्वरूप को प्रदान करने में हम भूल करते हैं। यह भूल अर्थात् अविद्या का यह रूप इस तुच्छ शरीर के लिए उत्कर्ष चाहने का कारण है। अच्छा, यदि यह अज्ञान शैतान कहा जा सके, यदि शैतान का अनुवाद अज्ञान किया जा सके, तो हम कह सकते हैं कि इस रीति से शैतान आकर चीजों को अस्तव्यस्त कर देता है, आत्मा का गौरव शरीर को और शरीर की असारता आत्मा को प्रदान कर देता है। इस अविद्या को दूर करो और तुम अभिमान अथवा अहंकार को नष्ट कर दोगे।

३. लोभ—यह क्या बात है कि लोभ (greed), उत्कर्ष, या लालच सार्वभौम हैं? पशुओं में लोलुपता है, यह मनुष्यों में है, नारियों में है, प्रत्येक में है। यह क्या बात है कि लोलुपता, लालच या उत्कर्ष सार्वभौम है? हर एक चाहता है कि उसे सब तरह की वस्तुयें प्राप्त हो जायँ। हर एक अपने शरीर के इर्द-गिर्द पदार्थों का संग्रह करना चाहता है, पर लोलुपता की तृप्ति कभी नहीं होती। जितना ही अधिक तुम प्राप्त करते हो, उतना ही अधिक लोभ की लौ भड़कती है, उतना ही अधिक वह लौ पुष्टि पाती है। तुम सम्राट् बन जाते हो; परन्तु फिर भी लोभ वर्तमान है, और सम्राट् तुल्य महान है। तुम गरीब आदमी हो और

तुम्हारा लोभ भी गरीब है। यह सार्वभौमिक क्यों है? गिरजों में, देवालयों में और मसजिदों में, सर्वत्र उपदेशक बड़े-बड़े उपदेश देते हैं और कहते हैं, "भाइयो! लोभ छोड़ो, लोभ छोड़ो, लोभ छोड़ो"। लोभ का गला घोटने में वे अपनी पूरी शक्ति लगा देते हैं, वे उसे हटाना और निर्मूल करना चाहते हैं; परन्तु उनके सम्पूर्ण निवारण-पूर्ण उपदेश व्यर्थ जाते हैं, और वह बना ही रहता है। यह क्यों? वह रोका नहीं जा सकता, उसका गला नहीं दबाया जा सकता, वह वर्तमान रहता है। इस समस्या को समझाओ। लोभ के रोग को विनष्ट करने की इच्छा करने के पूर्व हमें उसका कारण जान लेना चाहिए। जब तक तुम रोग का कारण न जानलोगे, तब तक उसे अच्छा करने की आशा तुमसे नहीं की जा सकती। हमें उसका कारण जान लेना चाहिए। "शैतान तुम्हारे हृदय में लोभ को रखता है", यह कहना अवैज्ञानिक, अतात्त्विक है। तर्कशास्त्र के सब नियमों के विरुद्ध है। इससे काम नहीं चलेगा। यदि तुम तथ्य की कोई वैज्ञानिक व्याख्या नहीं कर सकते, तो यह पौराणिक व्याख्या क्यों? यह सार्वभौम क्यों है? वेदान्त इसे यह कह कर समझाता है कि मनुष्य में सत्यता अर्थात् सत्यस्वरूप आत्मा है जो अपने आप को आप प्रतिपादन करता है। वह कुचला नहीं जा सकता। कहा जाता है कि कोई भी शक्ति नष्ट नहीं की जा सकती, कोई भी बल छिन्न-भिन्न नहीं किया जा सकता। शक्ति के उत्कर्ष (conservation of energy), पदार्थ की अनश्वरता (industructibility of matter) और शक्ति के दृढ़ आग्रह (persistence of force) के नियम को हम सुनते हैं। ये सब बातें हमें सुनने को मिलती हैं, और यहाँ वेदान्त कहता है, "ऐ उपदेशको, ऐ पुजारियो, ऐ ईसाइयो, हिन्दुओ और मुसलमानो! तुम इस शक्ति को, इस बल को, जो लोभ के रूप में प्रकट होता है,

कुचल नहीं सकते" । तुम इसका दमन नहीं कर सकते ; अनादि काल से सब प्रकार के धर्म लोभ, कृपणता, लालच के विरुद्ध उपदेश देते चले आ रहे हैं; परन्तु तुम्हारे वेद, बाइबिल और कुरान संसार को कुछ भी नहीं सुधार सके । लोभ वर्तमान है। शक्ति नष्ट नहीं की जा सकती ; परन्तु तुम उसका सदुपयोग कर सकते हो । वेदान्त कहता है, 'ऐ संसारी मनुष्य ! तू एक गलती करता है" । सब से महान् शब्द अर्थात् तीन अक्षरों का शब्द जीG–ओO–डीD (गॉड = ईश्वर) ले लीजिये, और उसे व्यतिक्रम से पढ़िये । वह क्या हो जाता है ? डीD–ओO–जीG (डाग = कुत्ता) । इसी प्रकार तुम शुद्धों में विशुद्ध का अनर्थ कर रहे हो ; तुममें जो शुद्ध ईश्वर है, तुम उसे कुछ और ही समझ रहे हो ; उसे तुम उलटी तरह से पढ़ रहे हो ; और इस तरह अपने को सचमुच कुत्ता बनाते हो । यद्यपि वास्तव में तुम विशुद्धों में विशुद्ध अर्थात् विशुद्ध ईश्वर हो । भूल से आत्मा का गौरव शरीर पर और शरीर की तुच्छता आत्मा पर आरोपित करने के अज्ञान के कारण अर्थात् इस भूल के कारण तुम लोभ के शिकार बनजाते हो । इस भूल को निर्मूल करदो, और बस तुम अमर परमात्मा हो ; अपने में निहित सच्चे स्वरूप का उद्धार करो ; सच्चे स्वरूप में दृढ़ता से जमो ; और अपने को देवों का परमदेव, अखिल में विश्व का स्वामी तथा प्रभुओं का प्रभु अनुभव करो ; फिर इन बाहरी वस्तुओं को ढूंढ़ कर इस शरीर के इर्दगिर्द जमा करना तुम्हारे लिए असम्भव हो जायगा ।

४. मोह—अब हम मोह या शोक के विषय पर आते हैं । मोह का कारण क्या है ? इसका अर्थ यह है कि इस से ग्रसित मनुष्य अपने आस-पास की वस्तुओं में परिवर्तन नहीं चाहता । किसी अपने प्रिय की मृत्यु से मनुष्य चिन्ता और शोक से परिपूर्ण हो जाता है । उसके शोक और चिन्ता से क्या सूचित होता है ? उससे क्या सिद्ध होता है ?

जब हम बुद्धि से जानते हैं कि इस संसार में प्रत्येक वस्तु परिवर्तन-शील है, बहाव की दशा में है, तो क्यों हम ज्यों की त्यों दशा बनी रहने की आशा कर सकते हैं ? क्या हम अपने प्यारों को सदा अपने पास रखने की आशा कर सकते हैं ? और फिर भी हम इच्छा यही करते हैं कि कोई परिवर्त्तन न हो। यह क्यों ? वेदान्त कहता है, "ऐ मनुष्य, तुममें कोई ऐसी वस्तु है जो वास्तव में निर्विकार है, जो कल आज, और सदा एकसी है, परन्तु भूल (अज्ञान) से सच्चे स्वरूप वा आत्मा की नित्यता शरीर की अवस्थाओं को प्रदान की जाती है।" यही इसका कारण है। अज्ञान को दूर करो और सांसारिक अनुरागों से तुम ऊपर उठ जाओगे।

५. आलस्य—आलस्य या प्रमाद का कारण क्या है ? वेदान्त के अनुसार प्रमाद या आलस्य की सर्वव्यापकता या सार्वभौमिकता का कारण यह है कि प्रत्येक और सकल प्राणियों के अन्तर्गत सच्चा आत्मा पूर्ण विश्राम तथा शान्ति है, और अनन्त होने के कारण सच्चा आत्मा चल नहीं सकता। अनन्त चल नहीं सकता। केवल परिच्छिन्न वा सान्त ही में गति हो सकती है। यहाँ एक वृत है और वहाँ दूसरा वृत्त है। जहाँ यह है, वहाँ वह नहीं है और जहाँ वह है, वहाँ यह नहीं है। यदि एक दूसरे के अस्तित्व को सीमाबद्ध करते हैं, तो दोनों सान्त वा परिच्छिन्न हैं। यदि हम एक वृत्त को अनन्त बनाना चाहते हैं, तो वह समग्र स्थान को घेर लेगा। छोटे वृत्त के लिए स्थान न रह जायगा। जब तक छोटा वृत्त उस बड़े वृत्त को परिमित किये हुए था, तब तक आप उसे अनन्त नहीं कह सकते थे। पहले को असीम बनने के लिए एक अकेला होना पड़ेगा, उससे बाहर कुछ न होना चाहिए। और जब उससे बाहर कोई भी दूसरी चीज नहीं है, तो फिर ऐसी कोई चीज नहीं रह गई जो अनन्ता से परिपूर्ण नहीं है। और इस तरह स्थान के अभाव के

कारण अनन्तता चल नहीं सकती है। अनन्त में कोई परिवर्त्तन नहीं हो सकता। अन्तर्गत आत्मा अर्थात् सच्चा स्वरूप अनन्त है। वह सम्पूर्ण शान्ति या सम्पूर्ण विश्राम है। उसमें कोई गति नहीं है। ऐसी स्थिति में होते हुए अनन्त स्वरूप अर्थात् अनन्त स्वरूप आत्मा की शान्ति अज्ञानवश शरीर पर आरोपित की जाती है, जिससे उसमें आलस्य और प्रमाद पाया जाता है। आलस्य और प्रमाद के विश्वव्यापी होने का यही कारण है।

६. प्रतिद्वन्द्वता—यह क्या बात है कि इस संसार में कोई भी अपना रकीब (rival = प्रतियोगी) नहीं चाहता? हर एक सर्वश्रेष्ठ शासक बनना चाहता है।

I am the monarch of all I survey.
My right there is none to dispute.
"जो कुछ मैं देखता हूँ, उस सबका मैं हूँ सम्राट,
मेरे अधिकार पर आपत्ति करने वाला है कोई नहीं।"

हर एक मनुष्य यही भान करना चाहता है। इसकी विश्वव्यापकता का कारण क्या है? इस तथ्य अर्थात् इस कठिन, एवं उग्र सच्चाई को समझाइये, इसे अवश्य समझाइये। वेदान्त कहता है कि इसका मूल कारण यह है कि मनुष्य में सत्य आत्मा है, जो ऐकमेवाद्वितीयम् है, जो प्रतियोगी वा प्रतिद्वन्द्वी-रहित है, बेजोड़ है, और भूल से या अज्ञान से आत्मा का गौरव और एकत्व शरीर पर आरोपित किया जाता है।

७. कामुकता—कामुकता इसके अरिरिक्त और कुछ नहीं है कि इन्द्रियों के द्वारा सुन्दरता का उपभोग किया जाय। यह भी सार्वभौम है और इसको भी दूसरे पापों के समान ही समझना चाहिए। हम पूर्ण सुन्दरता हैं। आज भी हमारी अपरिवर्तनीय आत्मा पूर्ण सुन्दरता है और

सदैव रहेगी। और तब हमको इसका ज्ञान हो जायगा कि जो वस्तु हम अपने शरीर के लिए प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं वह या तो परमात्मा से संबंधित है या स्वयं परमात्मा है।

८. क्रोध—क्या कारण है कि क्रोध या विद्रोह सार्वभौम है? हम किसी प्रकार सीमित होने पर इसलिए संतोष नहीं करते कि हमारे अंदर परमात्मा का ज्ञान उपस्थित है जो आज भी स्वतंत्र है और सदैव स्वतंत्र रहेगा। हम छोटे बच्चों में बिद्रोह की भावना देखते हैं और उसे छूट मिलना ही चाहिए। हम यही विद्रोह प्राणियों में पाते है और उसे होना भी चाहिए। इसी प्रकार स्वतंत्रता के लिए राष्ट्र और देश में रक्तपात होता है। इसका कारण यही है कि आत्मा का ज्ञान नहीं होता है। परमात्मा स्वतंत्र है—इसके अतिरिक्त वह हो ही क्या सकता है? उसका कभी न जन्म होता है न मरण। सदैव ज्यों का त्यों बना रहता है। इसे अवश्य स्वतंत्र होना चाहिए। यदि इसमें सत्य होता कि तुम सीमित हो तो फिर कभी स्वतंत्र न होते। क्यों कि जितना ही इस सत्य का ज्ञान बढ़ता है तुम और सीमित होते जाते हो। परन्तु सत्य यह है कि हम आन्तरिक स्वतंत्रता रखते हैं और इसी सत्य का अनुभव हमारे सामने इस स्वतंत्रता का चित्र वास्तविक रूप में प्रस्तुत करता है।

दूसरे पापों के विषय में हम कुछ न कहेंगे। उन्हें भी वेदान्त इसी तरह समझाता है। सारे घोर से घोर पापों की व्याख्या हो गई, और इन पापों को दूर करने का सरल उपाय है एक मात्र विश्वव्यापी अज्ञान का दूर करना, जिसके कारण आप आत्मा के स्वभाव व लक्षण को शरीर के स्वभाव और लक्षण मानने की भ्रान्ति में फँसते हैं।

एक मनुष्य दो रोगों से पीड़ित था। उसे एक नेत्र-व्याधि और एक उदर-रोग था। वैद्य के पास जाकर उसने उनसे चिकित्सा करने को कहा। वैद्य ने इस रोगी को दो प्रकार की औषधियां अर्थात् दो तरह

के चूर्ण सेवन करने के लिए दिये। एक पौडर (सुरमा) नेत्रों में लगाये जाने के लिए दिया था। इसमें सुरमा अर्थात् गंधकी सुरमा (lead-sulphide) था, जो यदि पेट में चला जाय तो विष रूप था। यह आँखों में लगाया जा सकता था, और भारत में लोग इसे नेत्रों में लगाते हैं। इस लिए वैद्य ने उसे नेत्रों के लिए सुरमा दिया। दूसरा पौडर (चूर्ण) वैद्य ने खाने के लिए दिया था। इस चूर्ण में काली और लाल मिर्चें थीं। लाल मिर्च को अंग्रेजी में चिली (chilly) कहते हैं, जिसका अर्थ उस भाषा में शीतल (cold) होता है, पर जो वास्तव में बड़ी तीक्ष्ण होती हैं। अर्थात् एक चूर्ण वैद्य ने उसे खाने के लिए दिया, जिसमें मिर्चें थीं। यह मनुष्य घबराहट की दशा में था, इसलिए इसने दोनों चूर्णों को आपस में भूल से बदल दिया। खाने वाला चूर्ण तो उसने आँखों में लगा लिया, और सुरमा तथा दूसरी चीज, जो विष थी, उसने खाली। अब तो आँखें फूट गईं, और पेट पहले से भी बिगड़ गया।

लोग यही कर रहे हैं, और इस संसार में समस्त कथित पापों का यही कारण है। एक ओर तो आत्मा, अर्थात् प्रकाशों का प्रकाश तुम्हारे भीतर है; और दूसरी ओर यह शरीर है, जिसे पेट कह लीजिये शरीर के लिए जो कुछ होना चाहिए, वह आत्मा के निमित्त किया जा रहा है और आत्मा की प्रतिष्ठा, मान तथा गौरव शरीर को दिया जा रहा है। हर एक चीज उलट-पलट गई है, हर एक चीज गड़बड़ हालत में कर दी गई है। इसके कारण संसार में यह घटना हो रही है जिसे पाप कहते हैं। चीजों को ठीक कर लो, तुम भी ठीक हो जाओगे। तुम्हारा सांसारिक अभ्युदय होगा, और परमार्थ दृष्टि से आप देवों के देव हो जाओगे।

इसी प्रकार हर एक वस्तु आप में है, किन्तु कुठौर रक्खे जाने से

नीचे ऊपर पड़ गई है। ईश्वर को नीचे डाल दिया है और शरीर को उसके ऊपर उठा दिया है, अर्थात् सर्वोच्च स्वर्ग को घोर नरक में बदल डाला है। उन्हें ठीक क्रम से रख दो, फिर तुम देखोगे कि यह पापों की भयंकर और घृणित घटना भी आपकी अच्छाई और विशुद्धता बखानेगी। अपनी दृष्टि ठीक करो और आप अभी तुरन्त परमेश्वर हो।

एक मनुष्य ने, जो नास्तिक था, अपने घर की दीवारों पर सब कहीं लिख रक्खा था (God is nowhere) "ईश्वर कहीं नहीं है।" वह अनीश्वरवादी था। वह वकील था। एक बार एक मुवक्किल ने उसे ५००) देने चाहे। उसने कहा, "नहीं, मैं १०००) लूँगा।" मुवक्किल ने कहा—"बहुत अच्छा, यदि मुकदमा जिता दो तो मैं १०००) दूँगा ; परन्तु बाद को दूँगा। अभी यदि ५००) लेना मंजूर हो तो पहले ले लीजिये।" वकील साहब को सफलता का दृढ़ निश्चय था और उसने वैसे ही मुकदमा ले लिया। वह न्यायालय में गया। उसे पूरा निश्चय था कि मैंने सब कुछ ठीक किया है। उसने सावधानी से मुकदमे का अध्ययन किया था। किन्तु मुकदमा पेश होने पर विपक्षी के वकील ने एक ऐसी पुष्ट बात निकाल कर रख दी कि वह मुकदमा हार गया, अब मेहनताने के पूरे १०००) जाते रहे, जिसके पाने की उसे पूरी आशा थी। वह बहुत ही दुखी, हताश और उदास दशा में अपने घर लौटा। निराश अवस्था में जब वह अपनी मेज के ऊपर झुका हुआ था, तब उसका प्यारा दुलारा बच्चा शब्दों के हिज्जे करना सीख रहा था। वह हिज्जे करने लगा, "जी-ओ-डी = गॉड, आई-एस = इज (God is) इसके आगे का शब्द बड़ा था, उसमें अनेक अक्षर थे। बेचारा बच्चा इस शब्द के हिज्जे न कर सका। उसने इस शब्द को दो टुकड़ों में तोड़ डाला, एन-ओ-डब्ल्यू = नाऊ और एच-ई-आर-ई = हीयर (now here) और

बच्चा प्रसन्नता से उछल पड़ा। सम्पूर्ण वाक्य के हिज्जे कर डालने की अपनी सफलता पर वह चकित हो उठा। "ईश्वर अब यहाँ है" (God is now here), "ईश्वर अब यहाँ है।" वही वाक्य (God is nowhere) ईश्वर कहीं नहीं है" (God is now here) "ईश्वर अब यहाँ है" पढ़ा गया। यही सारा मामला है।

वेदान्त चाहता है कि आप चीजों के ठीक हिज्जे (यानी विन्यास) करें। उनका अशुद्ध पाठ न करें, उनके गलत हिज्जे न कीजिये। इस वाक्य "गॉड इज नोव्हेयर = God is nowhere" (ईश्वर कहीं नहीं है), अर्थात् पाप और अपराध की घटना को "गाड इज नाउ हीयर = God is now here" (ईश्वर अब यहाँ है) करके पढ़िये।

तुम्हारे पापों में भी तुम्हारा ईश्वरत्व, अर्थात् तुम्हारी प्रकृति का ईश्वरत्व प्रमाणित होता है। इसका अनुभव करो, और समग्र संसार तुम्हारे लिए स्वर्ग रूप में खिल उठेगा, अर्थात् वह स्वर्ग या नन्दन-कानन में बदल जायगा।

एक बार परीक्षा में विद्यार्थियों से "ईसा के पानी को मद्य में बदल देने के चमत्कार" पर निबन्ध लिखने को कहा गया था। कमरा छात्रों से भरा हुआ था, और सब लिख रहे थे। बेचारा एक विद्यार्थी (बाइरन = Byron) सीटी बजा रहा था, गा रहा था, तथा कभी इस कोने की ओर और कभी उस कोने की ओर देख रहा था। उसने एक शब्दांश भी (syllable) नहीं लिखा था। वह परीक्षा भवन में भी खेल ही करता रहा, बैठा मौज करता रहा। ओह, उसका चित्त स्वाधीन था। समय बीतने पर जब प्रबन्धक उत्तर-पत्र जमा कर रहा था, तो उसने बाइरन से व्यंग में कहा, "मुझे बड़ा खेद है कि इतना बड़ा निबन्ध लिखते-लिखते तुम थक गये होगे।" लो, बाइरन ने अपना कलम उठाया

और उत्तर-पत्र पर एक वाक्य लिख कर उत्तर-पत्र प्रबन्धक को दे दिया। जब परीक्षा का नतीजा निकला, तो उसे प्रथम पुरस्कार मिला। उसी बाइरन को प्रथम पुरस्कार मिला। जिस परीक्षार्थी ने कुछ भी नहीं लिखा था, जिसने कलम उठा कर केवल एक वाक्य एक दफे में घसीट दिया था, उसे प्रथम पुरस्कार मिला। परीक्षा का प्रबन्धक, जिसने बाइरन को खिलाड़ी समझ रखा था, बड़ा विस्मित हुआ, और अन्य परीक्षार्थियों ने परीक्षक महोदय से सम्पूर्ण श्रेणी के सामने अर्थात् विद्यार्थियों के पूरे समूह के सामने बाइरन का निबन्ध, जिसने उसे पुरस्कार दिलाया था, पढ़ने की प्रार्थना की। निबन्ध यों था:—"The water saw its Lord and blushed" "जल ने अपने स्वामी को देखा और लज्जा-वश लाल हो गया।" यह निबन्ध ईसा के चमत्कार पर था, जिसमें ईसा ने जल को मद्य में बदल दिया था। सम्पूर्ण लेख इतना ही था। क्या यह आश्चर्यमय नहीं है? लज्जा और प्रफुल्लता में चेहरा लाल हो जाता है, जल लाल हो कर मद्य स्परूप हो गया। जब कोई कामिनी अपने स्वामी अथवा अपने प्रेमी की बातचीत सुनती है, तो वह लज्जित हो जाती है, जल ने भी अपना स्वामी देखा और वह लज्जा से लाल हो गया। बस, इतना ही लिखा था। वाह, वाह! क्या खूब! क्या खूब कहा!

अब अपने अन्तर्गत सच्चे आत्मा का अनुभव करो। ईसामसीह की तरह अनुभव करो कि "पिता और पुत्र एक हैं" (that the father and son are one) "प्रारम्भ में शब्द था; शब्द ईश्वर के साथ था"। इसे अनुभव करो, इसे ठीक-ठीक अनुभव करो। "स्वर्गों का स्वर्ग तुम्हारे भीतर है" (The Heaven of heavens is within you)। यह अनुभव करो; फिर जहाँ कहीं तुम जाओगे गँदले से गँदला जल तुम्हारे लिए चमचमाते मद्य में खिल उठेगा, हर एक

कारागार तुम्हारे लिए स्वर्गों के स्वर्ग में बदल जायगा। तुम्हारे लिए कोई भी कष्ट या कठिनता न होगी, तुम सबके स्वामी हो जाओगे।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!